08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 197

कौन-से वाल्मीकि? उपनिवेशवाद, हिंदुत्व और सफ़ाईकर्मी समाज का धार्मिक इतिहास

जोएल ली

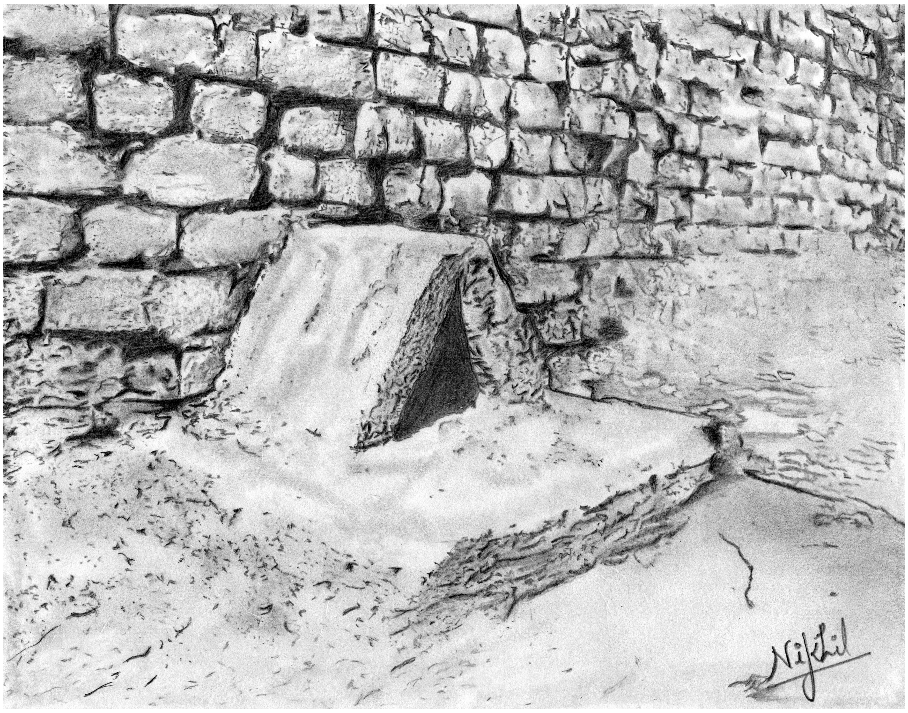

उत्तर भारत के विभिन्न क़स्बों-शहरों के चौपालों एवं अड्डों पर, आम जनमानस में, राजनैतिक और सामाजिक आंदोलनों में और दानिशमंदों की किताबों के पन्नों में पिछले कई दशकों से सफ़ाई कामगार समाज के मुद्दे पर एक बहस चल रही है। सफ़ाई कामगार समाज – यानि दलित समाज का वह हिस्सा जो सफ़ाई के पेशे से जुड़ा हुआ है – बाल्मीकि या वाल्मीकि नाम से कब और कैसे पहचाना जाने लगा? इस प्रश्न के साथ-साथ यह भी पूछा जाता है कि इस वाल्मीकि नाम से हिंदुत्व या हिंदू बहुसंख्यकवाद का क्या ताल्लुक़ है? जब संस्कृत रामायण के अंदर इसके रचयिता माने जाने वाले ऋषि वाल्मीकि ब्राह्मण के ही रूप में दिखाए जाते हैं और आधुनिक काल से पहले सफ़ाई कामगार समाज के वाल्मीकि नाम से पहचाने जाने का कोई प्रमाण नहीं है, तो सवाल स्वाभाविक है कि इस पीड़ित समाज से उस संस्कृत कवि के नाम का संबंध कैसे जुड़ गया?

कई लेखकों ने इस मुद्दे पर अपनी राय रखी है। कुछ लोगों का मानना है कि वर्तमान के सफ़ाई कामगार समाज का त्रेता युग के ऋषि वाल्मीकि से एक अटूट, क्रमबद्ध एवं सिलसिलेवार रिश्ता है। ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में यह मान्यता विश्वास पर ही आधारित है। दूसरों का दावा है कि बीसवीं सदी की शुरुआत में आर्य समाज हिंदुओं की संख्या बढ़ाने के मक़सद को लेकर स्वच्छकार समाज के बीच में घुसकर बताने लगा कि आप लोगों का रामायण- प्रणेता ऋषि वाल्मीकि से प्राचीन संबंध है – यानि मौजूदा बाल्मीकियों का जातीय उपनाम आर्य समाज की देन है। इस दावे के सहारे में प्रचुर एवं ठोस प्रमाण उपस्थित हैं। लेकिन तीसरी तरफ़ एक और खेमा है जिसका कहना है कि दरअसल, आर्य समाज की दख़ल-अंदाज़ी से पहले भी सफ़ाई कामगार समाज के कम-से-कम कुछ लोग अपने आप को बाल्मीकि कहते थे। इसमें भी कुछ सच्चाई है। कुल मिलाकर मामला बड़ा पेचीदा है, तभी तो इतने दशकों में बहस ख़त्म नहीं हुई है।[1]

इस लेख में जो पेश किया जाएगा, वह कुछ लोगों को हैरान कर सकता है। शोषितों का अतीत अक्सर दबाया जाता है। उसी तरह सफ़ाई कामगार समाज से संबंधित कई तथ्यों को इतिहास के गड्ढों में दफ़नाने की कोशिश की गई है। मगर यह कोशिश पूरी तरह से कामयाब नहीं रही। कहीं-न-कहीं अभिलेखागार के धूल-भरे कोनों में, बड़े बुज़ुर्गों की याददाश्त की गहराइयों में और गाँव-बस्ती के पिछवाड़े की ख़ाक में दफ़नाए हुए तथ्य अभी भी तलाशने वालों को अपनी झलक दिखला जाते हैं।

विषय की जड़ अगर पकड़नी है तो हमें पहले यह पूछना पड़ेगा कि आर्य समाज के हस्तक्षेप से पूर्व सफ़ाई कामगार समाज की पहचान क्या थी? पहचान बड़ी पेचीदा गाँठ होती है, जिसको खोलने के लिए हमें कई सवाल पूछने पड़ेंगे – उपनिवेशी ब्रिटिश सरकार हिंदुस्तान के सफ़ाई कामगार समाज को कैसे और किस आधार पर वर्गीकृत करती थी? दूसरे समाज और समुदाय के लोग स्वच्छकार समाज को किस नाम से जानते थे और क्या उनको अपना या पराया समझते थे? और सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सफ़ाई कामगार समाज के लोग ख़ुद क्या सोचते थे – अपने आप को क्या बुलाते थे और धर्म-मज़हब के मामले में अपने आपको किस समुदाय का समझते थे?

इस लेख के पाँच भाग हैं। पहले भाग में हम देखेंगे कि उन्नीसवीं सदी के आख़िर में और बीसवीं सदी की शुरुआत में उपनिवेशी सरकार और हिंदू समाज के लोग स्वच्छकार समाज

[1] उत्तर भारत के स्वच्छकार समाज के इतिहास पर जो शोध एवं अनुसंधान मैं पिछले दस साल से कर रहा हूँ, उसके कुछ पहलू मैं इस लेख में पेश करना चाहूँगा. अनुसंधान का फल किसी एक व्यक्ति की कोशिशों से नहीं बनता बल्कि बहुत शख़्सों की मेहनत से बनता है. इस शोध में अपनी ख़ुद की खोज के साथ साथ मुझे बहुत मदद स्वर्गीय भगवान दास, स्वर्गीय ओमप्रकाश वाल्मीकि, इतिहासकार विजय प्रसाद, और अन्य कई विद्वानों की किताबों से प्राप्त हुई. लखनऊ और दिल्ली के इस समाज के बुज़ुर्गों से भी बेइंतहा क़ीमती जानकारी हासिल हुई. हिंदी मेरी मातृभाषा नहीं है. मेरी भाषागत ग़लतियों को सुधारने में उस्ताद हैदर उस्मान, डॉ. राम चंदर, और *प्रतिमान* के संपादक रविकान्त ने बहुत मदद की. इन नेक शख़्सों की कोशिशों के बावजूद मेरे लेख में अनगिनत भाषागत कमियाँ होंगी जिसके लिए मैं ख़ुद ज़िम्मेदार हूँ, इसलिए पढ़ने वालों से मैं शुरु में ही क्षमा माँगना चाहूँगा. मैं इस अंक के चित्रों के लिए चित्रकार सान्या दारापुरी और निखिल मायुर को धन्यवाद भी देना चाहता हूँ.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 199

को किस समुदाय का समझते थे और कैसे वर्गीकृत करते थे। भाग दो में हम उसी ज़माने के सफ़ाई कामगार समाज के ख़ुद के लोकगीत, लोककथाएँ और कहावतें सुनेंगे ताकि हम समझ सकें कि उनकी आत्मचेतना क्या थी। तीसरे भाग में हम बीसवीं सदी के उन पहले तीन दशकों पर ग़ौर करेंगे जब आर्य समाज ने दलित और ख़ास तौर पर सफ़ाई पेशे से जुड़ी जातियों के हिंदूकरण, यानि उनको हिंदू बनाने की मुहिम, चलाई। हम देखेंगे कि क्यों और किन परिस्थितियों में आर्य समाज ने यह क़दम उठाया। चौथे भाग में हम देखेंगे कि आख़िरकार ऋषि वाल्मीकि को इस झमेले में कैसे शामिल किया गया। पाँचवें भाग में हम सफ़ाई कामगार समाज के धार्मिक स्वत्व या मज़हबी ख़ुद-मुख़्तारी की पुरानी परंपरा और पिछले दस दशकों के हिंदूकरण पर कुछ टिप्पणियों के साथ लेख समाप्त करेंगे।

1.

'हिंदू' एक पुराना शब्द है लेकिन एक धार्मिक क़ौम या समुदाय वाला इसका जो अर्थ आजकल माना जाता है, वह दरअसल आधुनिक काल में ही बड़े पैमाने पर प्रचलित हुआ है। प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास में 'हिंदू' का अर्थ अधिकतर 'हिन्द (यानी इंडिया, भारतीय उपमहाद्वीप) से संबंधित' था। मसलन, दिल्ली सल्तनत और मुग़ल काल के दस्तावेज़ों में 'हिंदू तलवार' का मतलब 'तलवार जो हिन्द में बनाई गई' हुआ करता था। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में जब 'हिंदू' सामाजिक समुदाय वाले अर्थ के साथ कुछ एक जगहों में दिखने लगे – मध्यकालीन मराठी लेखक एकनाथ का 'हिंदू-तुर्क संवाद' एक उदाहरण है – यह साफ़ नज़र आता है कि उन दस्तावेज़ों में हिंदू का मतलब है ब्राह्मण या सवर्ण जाति का व्यक्ति, और कोई नहीं।[2] अठारहवीं सदी में मारवाड़ राज्य की राजपूत सरकार ने उस ज़माने की सच्चाई और भी स्पष्ट की। मारवाड़ राजा ने 1785 में फ़रमान चलाया, जिसमें प्रजा दो हिस्सों में वर्गीकृत की गई थी – हिंदुआन (यानि हिंदू) और अच्छेप (यानि अछूत)।[3] फ़रमान में 'अच्छेप' समुदाय की सूची भी दी गई थी – 'तुरक ढेढ़ चमार... हलालख़ोर' – यानि कि उस राजपूत शासन की क़ानूनी व्यवस्था में मुसलमान ('तुरक'), कृषि करने वाले और पशु की खाल उतारने वाली शिल्पकार जातियाँ – (ढेढ़ और चमार), और सफ़ाई पेशे से जुड़ी जातियाँ, (जो उस ज़माने में सब मिलाकर 'हलालख़ोर' नाम से जानी जाती थीं) तीनों अछूत माने जाते थे और हिंदुओं से अलग। अलग ही नहीं, ये तथाकथित अच्छेप समाज हिंदुओं के विपरीत माने जाते थे – फ़रमान में जो कार्य 'हिंदुआन' के लिए अनिवार्य था, वही कार्य 'अच्छेप' के लिए वर्जित था।

अंग्रेज़ी हुकूमत पहली हुकूमत थी, जिसने सफ़ाई कामगार समाज और अन्य दलित जातियों को हिंदुओं के साथ वर्गीकृत किया। ब्रिटिश शासन ने 1881 से शुरू करके हर दस

[2] वसुधा डालमिया और हेनरिक वॉन स्टिटेनक्रोन (सं.), (2007); सिंथिया टैलबोट (1995); एलेनोर ज़ेलियट (1982).

[3] दिव्या चेरियन (2022) : 1-5.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 200

साल की जनगणना में आदेश दिया कि तथाकथित अछूत जाति के लोग अगर अपने आप को मुसलमान या ईसाई न कहें, तो उन्हें हिंदू ही माना जाए और जनगणना में हिंदुओं की संख्या में ही दर्ज किया जाए।[4] यह नियम ज़मीनी स्तर की सामाजिक हक़ीक़त से मेल नहीं खाता था। जनगणना में काम करने वाले कई अंग्रेज़ अफ़सरों ने नियम का पालन करते हुए भी इस बात पर टिप्पणी लगाई। मिसाल के तौर पर जनगणना के मुख्य आयुक्त ई.ए. गेट ने लिखा कि 'यह ज़ाहिरन बेतुकी बात है कि हम उन व्यक्तियों को हिंदू लिखवा रहे हैं जो न हिंदू देवी-देवताओं की पूजा करते हैं और न ही हिंदू मंदिरों में जा सकते हैं, जिनको दूसरे लोग हिंदू नहीं मानते और जो ख़ुद अपने आप को हिंदू नहीं कहते।'[5] 1881 की जनगणना के पंजाब मुख्य आयुक्त डेंज़िल इब्बेटसन ने जब सफ़ाई पेशे से जुड़ी चूहड़ा जाति के साथ हिंदू शब्द पहली बार जोड़ा तो उन्होंने तुरंत स्पष्टीकरण देते हुए लिखा – 'यानि कि एक चूहड़ा जो अपने जातीय मज़हब का पालन करता है और जिसको हमने हिंदू वर्गीकृत कर दिया है।'[6] इस 'हमने' पर ग़ौर किया जाना चाहिए – इब्बेटसन और अन्य अंग्रेज़ अफ़सर जानते थे कि उनकी सरकार का वर्गीकरण प्रजा की मान्यता से दूर था। इब्बेटसन ने उसी रिपार्ट में लिखा कि हालाँकि चूहड़ा जाति के लोग अक्सर अपने मालिक के रीति-रिवाज अपनाते थे – मसलन जहाँ ज़मींदार हिंदू थे, वे हिंदू तरीक़े से शव जलाते थे और जहाँ ज़मींदार मुसलमान थे, दफ़ना देते थे– फिर भी 'उनके मालिक उनको न हिंदू मानते थे और न मुसलमान।'[7] सदी के आख़िरी दशक में प्रशासन कर्मचारी रिचर्ड ग्रीवन और अल्ताफ़ हुसैन ने देखा कि वाराणसी में जब कोई सफ़ाई कर्मचारी अपने आप को हिंदू या मुसलमान कहता भी था तो 'इस बात से हिंदू भी इंकार करते हैं, जो सफ़ाई वालों को मंदिरों से बहिष्कृत करते हैं और मुसलमान भी इंकार करते हैं, जो सफ़ाई वालों को मस्जिदों से बहिष्कृत करते हैं।'[8]

औपनिवेशिक सरकार के नए वर्गीकरण का एक मतलब यह था कि अब हिंदू से जो एकदम विपरीत या विलोम था, वह अचानक शासन के दृष्टिकोण में हिंदू ही माना जाएगा। अर्थात् तथाकथित सवर्ण और तथाकथित अछूत एक ही समुदाय के सदस्य माने जाएँगे। यह बात लोगों को न सिर्फ़ बेतुकी लगी बल्कि बहुत सारे हिंदुओं को नागवार और आपत्तिजनक भी लगी। इनमें से वे हिंदू भी थे जो प्रशासन में कर्मचारी थे और जिनको ख़ुद यह नया वर्गीकरण लागू करना पड़ा था। जनगणना 1881 की रिपोर्ट में एक आयुक्त ने यह टिप्पणी दी कि 'जो जनगणना के प्रगणक या सुपरवाइज़र कट्टर हिंदू हैं, उनमें से बहुत हैं जो ऐसे नीच व्यक्तियों को हिंदू धर्म का लिखने से ऐतराज़ करते हैं। बहुत ऐसी घटनाएँ मेरे सामने आईं जिनमें उन [अछूत] लोगों का धर्म ढेढ़, मांग या चांडाल धर्म लिखा गया था... लगता है कि उनसे

[4] पंडित हरिकृष्ण कौल (1911) : 97.; विजय प्रसाद (2000) : 67-68.

[5] ई. ए. गेट (1913) : 114, ; वसुधा डालमिया (2007) : 14.

[6] डेंज़िल इब्बेटसन (1970) : 294.

[7] वही : 268.

[8] रिचर्ड ग्रीवेन (1894) : 7-8, 38.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 201

पूछा ही नहीं गया।'[9] दस वर्ष पश्चात 1891 की जनगणना की रिपार्ट में यह मिलता है कि 'प्रगणकों ने निम्न और अशुभ जातियों – जैसे सफ़ाई कर्मचारी और गाँव के श्रमिक – के सदस्यों के आगे हिंदू शब्द लगाने में सख़्त ऐतराज़ किया।'[10] फिर दस साल बाद, 1901 की जनगणना में पंजाब के आयुक्त ने देखा कि 'चूहड़ों को हिंदू धर्मी लिखने से प्रभुत्वशाली हिंदू प्रगणक आपत्ति जताते हैं, जिस वजह से अक्सर उनके लिए [जनगणना के फ़ॉर्म में, धर्म के ख़ाने में] चूहड़ा या मुसलमान लिखा जाता है।'[11] 1911 की जनगणना में भी इस तरह की टिप्पणियाँ मिलती हैं कि जनगणना के प्रगणक व सुपरवाइज़र जो हिंदू थे, वे सफ़ाई कामगार जातियों को हिंदू लिखने पर ऐतराज़ जताते थे।[12]

बीसवीं सदी के हिंदू बहुसंख्यकवादी आंदोलन से पहले सवर्ण जाति के जो लोग अपने आप को हिंदू कहने लगे थे, वे दलित तबक़े और विशेष रूप से स्वच्छकार समाज के लोगों को अपना सहधर्मी नहीं मानते थे। उत्तर भारत में ही नहीं, यह बात दूसरे इलाक़ों में भी नज़र आती है। तमिलनाडु के संदर्भ में प्रसिद्ध समाचार पत्र 'द हिंदू' ने जून 1891 में यह स्पष्ट किया कि जहाँ तक 'पराइयाँ' या 'परिया' नाम की अछूत जाति का सवाल था, 'हिंदू उनको अपने समाज का हिस्सा नहीं मानते।'[13] या मध्य भारत की मिसाल लें तो जनगणना के अफ़सर एच.वी. रसेल और राय बहादुर हीरा लाल ने लिखा कि 'छत्तीसगढ़ में किसी को हिंदू कहने

[9] डब्ल्यू. चिचले प्लॉडेन (1883) : 17.

[10] जे. ए. बेन्स (1893) : 158.

[11] होरेस ऑर्थर रोज़ (1902) : 113.

[12] ई. ए. गेट (1913) : 115.

[13] रूपा विश्वनाथ (2014) : 1.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 202

का मतलब है कि वह आदमी चमार नहीं है... इन दो वर्गों के बीच एक स्थिर, द्वेषपूर्ण दुश्मनी क़ायम है।'[14] जहाँ देखें, वहाँ यही बात सामने आती है कि बीसवीं सदी तक अंग्रेज़ हुकूमत के नए वर्गीकरण के बावजूद आम जनता के नज़रिये में दलित जातियों के नाम हिंदू समाज के अंदरूनी सदस्य के रूप में नहीं, बल्कि हिंदू के विलोम के अर्थ में लिया जाता था। उस ज़माने की सामाजिक व्यवस्था की ज़मीनी सच्चाई अंग्रेज़ सरकार की जनगणना की तालिकाओं में कम दिखती थी और मारवाड़ के 1785 वाले शाही फ़रमान में ज़्यादा दिखाई देती थी।

जिस ऐतिहासिक सिलसिले पर यह लेख रोशनी डालने की कोशिश कर रहा है, उसमें हिंदू सुधारक संगठन आर्य समाज ने एक बड़ी अहम भूमिका निभाई है। क्या आर्य समाज बीसवीं सदी से पहले तथाकथित अछूत जातियों को अपने हिंदू समाज का एक हिस्सा समझता था? आर्य समाज के ख़ुद के अंग्रेज़ी रिसाले *आर्य पत्रिका* का 8 अगस्त, 1896 का अंक इस रहस्य से परदा उठाता है। *आर्य पत्रिका* के संपादक ने लिखा :

> चूहड़ों का हमारे समाज में प्रवेश कराकर उनका उत्थान जाहिलों को बेतुकेपन का शिखर लगता होगा... फिर भी हमें मानना पड़ेगा कि अब तक किसी ने [आर्य] समाज का रुख़ इन बातों की ओर मोड़ने का नहीं सोचा। ऐसे नीच और दबे हुए लोगों के बीच जाकर धर्म परिवर्तन कराने का विचार ही घृणास्पद लगता है। जिन समाज में हम रहते हैं, उसके लोग हमारा ऐसा करना पल भर को भी बर्दाश्त नहीं करेंगे और हमारी ख़ुद की रूह इससे कराह उठती है। ईसाई भले ही वही करते हों।[15]

इस दस्तावेज़ में *आर्य पत्रिका* के संपादक साफ़-साफ़ दिखाते हैं कि 1890 के दशक में हिंदू सुधारक संगठन आर्य समाज में भी यह विचार कहीं नज़र नहीं आता कि सफ़ाई कामगार जातियों के लोग किसी तरह से हिंदुओं के सहधर्मी हैं। सहधर्मी तो दूर की बात – दलित वर्ग के व्यक्तियों के आर्य समाज में महज़ आने की जब ये आर्य लेखक कल्पना करते हैं तो उनकी रूह घृणा से काँपने लगती है। ग़ौरतलब यह भी है कि 'चूहड़ों का हमारे समाज में प्रवेश' कराने के लिए 'धर्म परिवर्तन' की आवश्यकता होगी – यानि कि आर्य समाजियों के दृष्टिकोण में सफ़ाईकर्मी जातियाँ किसी अन्य धर्म की थीं।

तो फिर उनका धर्म क्या था?

2.

बर्तानवी भारतीय सेना के कप्तान और लोक कथाओं का अध्ययन करने वाले रिचर्ड कार्नाक टेम्पल ने 1884 में छपी हुई अपनी किताब *लेजेंड्स ऑफ़ द पंजाब* में लिखा कि 'मशहूर है

---

[14] आर. वी. रसेल और राय बहादुर हीरा लाल (1916) : 315.

[15] जेम्स रीड ग्राहम (1943) : 490.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 203

कि स्वच्छकार समाज के लोग या उत्तर भारत में उनमें से बहुतायत लाल बेगी हैं यानि लाल बेग के अनुयायी, और उनका अपना ख़ुद का धर्म है – न हिंदू न मुसलमान – जिसके रीति-रिवाज और गुरु-पुजारी दूसरे धर्म से अलग और स्वायत्त हैं।'[16]

टेम्पल ही नहीं, उस ज़माने के अनेक लेखकों ने – ख़ास तौर पर ज़मीनी स्तर की सच्चाई को नज़दीक से देखने वाले जो लेखक थे – इस तरह का उल्लेख किया कि स्वच्छकार समाज का अपना ख़ुद का मज़हब था, जिसके केंद्र में लाल बेग नामक एक पीर या पैग़म्बर थे। लेखक रडयार्ड किप्लिंग ने 'लाल बेग का बदला' नामक कहानी और फिर *किम* नामक बहुचर्चित उपन्यास में लाल बेगी धर्म का ज़िक्र किया है।[17] उसी तरह सय्यद अहमद देहलवी ने अपने *फ़र्हंग-ए-असफ़िया* नामक प्रसिद्ध विश्वकोश में लाल बेग का इंदराज लिखा, रिचर्ड ग्रीवन ने अपनी किताब 'नाइट्स ऑफ़ द ब्रूम' में लाल बेगी मज़हब का भरा-पूरा विश्लेषणात्मक अध्ययन किया और अन्य कई बुद्धिजीवियों, सरकारी अफ़सरों, पत्रकारों और ईसाई धर्म प्रचारकों ने कमोबेश विवरणात्मक ढंग से इस अनोखी धार्मिक परम्परा पर लिखा।[18]

इन तमाम सूत्रों के अनुसार लाल बेगी धर्म सफ़ाई कामगार समाज में काफ़ी हद तक व्याप्त था। पूर्वी इलाक़ों में जहाँ डोम, हेला और बाँसफोड़ जातियाँ बड़ी तादाद में रहती थीं, उन जातियों का लाल बेग धर्म के अनुयायी होने का कम प्रमाण मिलता है। लेकिन विभाजन-पूर्व संयुक्त पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, और यू.पी. तथा दक्षिण और बंगाल के शहरों एवं छावनियों में (पुणे, हैदराबाद, कोलकाता, इत्यादि) – जहाँ चूहड़ा जाति और एक हद तक धानुक भी बड़ी तादाद में रहते थे – इन बिरादरियों को ज़्यादातर लाल बेगी ही माना जाता था। लाल बेगी धर्म यहाँ तक फैला हुआ था कि उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के अधिकतर शब्दकोशों में 'भंगी, चूहड़ा, हलालख़ोर और मेहतर [जातियाँ]' लाल बेगी के इंदराज में परिभाषित मिलते हैं – यानि कि लाल बेगी सफ़ाई कामगार समाज के व्यक्तित्व का पर्याय बन गया था।[19]

लेकिन किस आधार पर यह बात कही जा रही थी कि लाल बेगियों का अपना ख़ुद का धर्म या मज़हब था? धर्म के दायरे में स्वत्व, स्वायत्तता या ख़ुद-मुख़्तारी का आख़िरकार मतलब क्या होता है? यह बड़ा जटिल मुद्दा है। एक तरफ़ औपनिवेशिक सरकार के नए वर्गीकरण के कारण स्वच्छकार समाज का व्यक्ति चाहे कुछ भी कहे, वह सरकारी दस्तावेज़ में हिंदू ही माना जाने लगा था। दूसरी तरफ़ यह बात भी थी कि यह समाज छुआछूत और जातिगत शोषण का शिकार था और तथाकथित ऊँची जातियों पर आर्थिक रूप से निर्भर भी। जातिगत उत्पीड़न की धार कुंद करने की कोशिश करते हुए और अपनी आर्थिक निर्भरता को

---

[16] रिचर्ड कार्नैक टेम्पल (1884) : 529.

[17] रडयार्ड. किम. किप्लिंग (1901, 1887).

[18] आर. बर्न (1902); जेम्स एम. कैंपबेल (1885); सैयद अहमद देहलवी (1879); रिचर्ड ग्रीवेन (1894); पंडित हरिकृष्ण कौल (1911); एच. यू. वीटब्रेख्त (1886); जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1906).

[19] सैयद अहमद देहलवी (1879); अल हज़ मौलवी (1925); कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, और मुकुंदीलाल श्रीवास्तव (सं.), (1953).

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 204

देखते हुए सफ़ाई कामगार समाज के लोग काफ़ी हद तक जिन ज़मींदार या दबंग जातियों के यहाँ वे काम करते थे, उनके रीति-रिवाज – चाहे वे हिंदू हों या सिख या मुसलमान – बाहरी तौर पर अपनाते थे।[20] नाम रखना हो, बाल-दाढ़ी कटाना हो या पहनावे-ओढ़ावे को लेकर, जैसा राजा वैसी प्रजा। इस वजह से नए वर्गीकरण के लागू होने के बावजूद जनगणना में स्वच्छकार समाज के धर्म को लेकर काफ़ी भ्रम था।[21] कुछ अधिकारियों ने नए नियम का पालन करते हुए लाल बेगियों को हिंदुओं में गिन लिया, मगर औरों ने उन्हें सिखों या मुसलमानों में जोड़ दिया। 1901 की जनगणना के यू.पी. प्रांतीय आयुक्त आर. बर्न ने लाल बेगी धर्म को इस्लाम का पंथ दर्ज किया, जो आबादी में सुन्नी और शिया के बाद तीसरी जगह पर था।[22] 1911 की जनगणना की पंजाब रिपोर्ट में लाल बेगियों को तीन बार – हिंदू, सिख और फिर मुसलमान पंथों में — गिना गया।[23]

अभी तक हमने जिन ऐतिहासिक स्रोतों पर विचार किया, उनमें एक बड़ी कमी है। या तो ये ऊपर की, ज़ाहिरी चीज़ों पर आधारित थे – नाम, लिबास, बाल काटने का तरीक़ा, जीवन के उस दायरे की चीज़ें, जिनमें स्वच्छकार समाज अपने मालिकों की शैली अपनाता था – या फिर जहाँ वे दूसरों के कहने पर निर्भर थे – जैसे जनगणना के प्रगणक, सुपरवाइज़र या आयुक्त – या फिर किसी सरकारी वर्गीकरण का प्रतिबिम्ब थे। सफ़ाईकर्मी समाज के लोग ख़ुद क्या सोचते या कहते थे, उनकी आत्मछवि क्या थी? शिक्षा से वंचित रखे जाने के कारण उस ज़माने में इस समाज के लोग लेखक बनने से भी वंचित रहे। पर इसका नतीजा यह नहीं निकला कि हम उस ज़माने के स्वच्छकार समाज के लोगों के ख़ुद के ख़यालात के बारे में कुछ नहीं जान सकते। सौभाग्यवश उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के आरंभ में स्वच्छकार समाज के अंदर जो लोकगीत गाए जाते थे और जो लोककथाएँ एवं कहावतें प्रचलित थीं, उनमें से अनेक उन्हीं दशकों में लिखी और बटोरी गईं और कई स्रोतों में मौजूद हैं। कुल मिलाकर ये गीत, क़िस्से-कहानियाँ, कहावतें वग़ैरह ऐसा ख़ज़ाना हैं जिसकी चमक में इतिहास के इस अँधेरे-भरे कोने में भी एक भूली-बिसरी परम्परा नज़र आने लगती है।

उस वक़्त के सफ़ाईकर्मी समाज में अपनत्व और ग़ैरियत का सामूहिक भाव समझने के लिए इस ख़ज़ाने को टटोलना आवश्यक है। पहले यह देखा जाए कि इन गीतों में धार्मिक स्थलों की क्या चर्चा है। बीसवीं सदी के हिंदूकरण से पहले भारतीय उपमहाद्वीप के भू-दृश्य पर लाल बेग के अनगिनत स्थान (थान या मढ़ियाँ) हुआ करते थे। इन थानों की रूपरेखा अधिकतर तीन प्रकार की होती थी। मिट्टी के छोटे चबूतरे के ऊपर पाँच गुम्बद बने होते थे या फिर ढाई ईंट का तिकोनिया ताक़ होता था, जिसमें बत्ती जलाई जाती थी। तीसरे प्रकार के

[20] हर्वे डेविट ग्रिसवॉल्ड (1921) : 227; हर्बर्ट जॉनसन स्ट्रिक्लर (1926).

[21] ई. ए. गेट (1902) : 435.

[22] आर. बर्न (1901) : 96.

[23] पंडित हरिकृष्ण कौल (1911) : 131-33, 58, 67.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 205

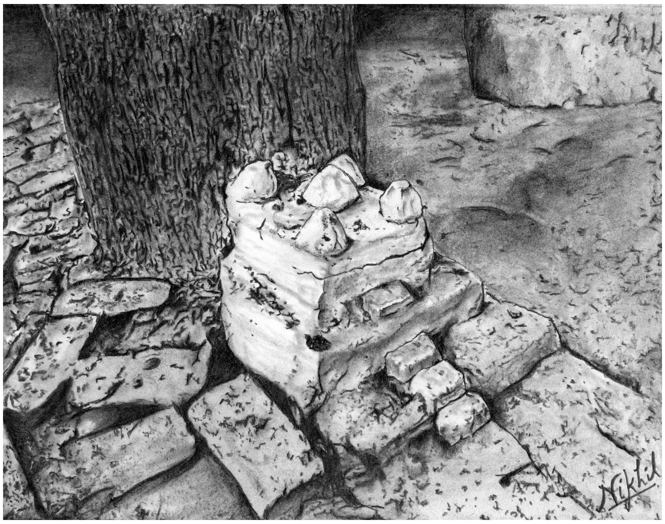

थान में गुम्बद और ताक़ दोनों मिलते थे।[24] दिखने में ये थान सूफ़ी पीरों के छोटे मक़बरों और बंगाल और पंजाब के लोकप्रिय पाँच पीरों के स्मृति-स्थलों से एक हद तक मिलते थे, और कभी-कभार जो लोग सफ़ाई बिरादरी से ताल्लुक़ नहीं रखते थे, लाल बेग के थान को देखकर ग़लतफ़हमी से इसे किसी सूफ़ी बुज़ुर्ग की क़ब्र समझ लेते थे।[25]

स्वच्छकार समाज के लोकगीतों में इन थानों का ज़िक्र है और ये हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक स्थलों से भिन्न बताए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर ग्रीवन ने वाराणसी में 1890 के दशक में यह लोकगीत सुनकर लिखा, जिसमें अली (इस्लाम के संस्थापक पैग़म्बर मुहम्मद साहब के दामाद) लाल बेग से कहते हैं कि :

हिंदू का देहरा
मुसलमान की मस्जिद
मैं सेवूँ तेरी कच्ची मढ़ी[26]

स्कॉटलैंड के जॉन यंगसन ने पंजाब के चूहड़ों में प्रचलित लोकगीतों में से निम्नलिखित गीत सुनके लिप्यंतरित किया :

जों हिंदू गंगा नु परसन
जों मक्का मुसलमानान

[24] रिचर्ड ग्रीवेन (1894) : 38; हर्बर्ट जॉनसन स्ट्रिक्लर (1926) : 763; हर्वे डेविट ग्रिसवॉल्ड (1921) : 565; जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1907) : 340-55.

[25] मुहम्मद हुसैन आज़ाद (1907/1880) : 394.

[26] रिचर्ड ग्रीवेन (1934) : 43-48.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 206

शाही नाम तेरे नु नुन मन्नान
पिंड पिंड थान बनावान[27]

जिसका आधुनिक हिंदी में मतलब कुछ ऐसा है :

ज्यों हिंदू गंगा नदी परसते हैं
ज्यों मुसलमान मक्का परसते हैं
वैसे शाही लोग तेरा नाम मानते हैं
हरेक गाँव में तेरा थान बनाते हैं

इधर 'शाही' लाल बेगी का पर्याय है, क्योंकि लाल बेग का दूसरा नाम था बाला शाह या बाला शाह नूरी। इन पदों में धार्मिक स्थलों और धार्मिक समूहों का संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गंगा व देहरा हिंदुओं का संकेत देते हैं जबकि मक्का व मस्जिद मुसलमानों का। मगर उन दोनों से अलग है लाल बेगियों की पूजा या इबादत करने की जगह – चाहे वह थान कहलाया जाए या कच्ची मढ़ी।

कुछ लोकगीतों में धार्मिक स्थल नहीं बल्कि धार्मिक आचार के माध्यम से इस समाज का हिंदुओं और मुसलमानों से अलग होना दिखाया जाता है। मिसाल के लिए यह सियालकोट से लिया हुआ गीत लीजिए :

शाहियाँ दे बहिश्ती जान दा इह पक्का निशान
ना रोज़ा ना अष्टमी ना तुर मक्का जान[28]

या एक और पद लीजिए :

शाहियों नुन फ़रमाना
ना मैं वर्तों अष्टमी
ना तुर मक्के जाना
अल्लाह अलिफ़ समान दा
सभो इह बयान[29]

इन पदों में अष्टमी व इसका व्रत रखना हिंदू धर्म के चिह्न हैं और रमज़ान का रोज़ा रखना व मक्का जाना इस्लाम के चिह्न हैं। और फिर से लाल बेगी या शाही की अलग राह लेने की

[27] जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1907) : 343.

[28] जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1907) : 27.

[29] वही : 343.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 207

बात साफ़ नज़र आती है – इस समाज के लोग हिंदुओं और मुसलमानों की व्रत-यात्रा न करके और त्यौहार न मनाकर बहिश्त यानि स्वर्ग जाएँगे।

सामूहिक अपनेपन का जो भाव यहाँ दिखाई दे रहा है, वह गीतों में ही नहीं बल्कि उस ज़माने के मुहावरों और आम बातचीत में भी मिलता है। यंगसन ने अपने पंजाब में रिहाइश के दिनों का एक वाक़या याद किया है, जिसमें धर्म के विषय पर एक मुसलमान मौलवी, एक ईसाई धर्म प्रचारक, और एक चूहड़ा बहस कर रहे थे। चूहड़े ने कहा कि – 'हमारा धर्म सबसे अच्छा है... कम-से-कम हिंदू धर्म से तो बेहतर है।'[30] बनारस में 1880 के दशक में एक कहावत प्रचलित थी कि 'जब किसी लाल बेगी से पूछा गया कि क्या कोई मुसलमान जन्नत जा सकता है तो जवाब मिला कि ऐसा कभी सुना नहीं लेकिन हो सकता है कि लाल बेग के पीछे-पीछे चले तो जन्नत पहुँच सकता है।'[31] जब हर्बर्ट स्ट्रिक्लर ने पंजाब के चूहड़ों के बीच शोध किया तो उनसे यह कहा गया कि 'बाला शाह (लाल बेग) के अनुयायी अगर बाबा नानक के पंथ में जाएँ तो वह बहिष्कृत किए जाते हैं।'[32] और कई उदाहरण हैं जिनमें स्वच्छकार समाज के लोग ईसाई धर्म में दिलचस्पी रखते हुए भी ईसाई नहीं बने; इसलिए कि ईसाई धर्मप्रचारक उनको लाल बेग की पूजा करने से मना करते थे।[33] मुख़्तसर में, इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि उस वक़्त के लाल बेगी अपने धर्म को हिंदू, सिख, ईसाई और इस्लाम चारों धर्मों से एकदम अलग समझते थे।

सफ़ाईकर्मी समाज की सामूहिक आत्मछवि की कल्पना की रूपरेखा तब और स्पष्ट हो जाती है जब हम उन शब्दों पर ग़ौर करते हैं, जो उनके लोकगीतों, पदों और कथाओं में अपने समूह के लिए इस्तेमाल किए जाते थे। इन तमाम सूत्रों में जाति, बिरादरी, पंथ और धर्म जैसे अल्फ़ाज़ बहुत कम मिलते हैं लेकिन दो शब्द अक्सर मिलते हैं – क़ौम और उम्मत। बनारस के लाल बेगियों की एक धार्मिक रस्म के दौरान गाए जाने वाले गीत में यह पंक्ति है :

> गायक – मेरे शाह जी की उम्मत बढ़ाया
> बाक़ी लोग – बोलो, मोमिनो, वही एक[34]

उसी तरह पंजाब में जो लाल बेगी कुर्सीनामे रिचर्ड टेम्पल को बताए गए, उनमें से एक में यह पंक्ति उपस्थित है – 'सर्जन उम्मत पाई।'[35] और फिर स्वच्छकार समाज के अनेक क़िस्से-कहानियों में उनके दूसरे समाजों से अलग होने की शुरुआत का जब ज़िक्र होता है तो अक्सर

---

30 जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1896) : 228.

31 रिचर्ड ग्रीवेन (1894) : 8.

32 देखें, हर्बर्ट जॉनसन स्ट्रिक्लर (1926) : चैप्टर. 3.

33 आर बर्न (1901) : 99; हर्वे डेविट ग्रिसवॉल्ड (1934) : 231; जे.एच. मेसमोर (1903) : 264-65.

34 रिचर्ड ग्रीवेन (1894) : 42.

35 रिचर्ड कार्नैक टेम्पल (1884) : 531.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 208

इस तरह की भाषा में घटना बयान होती है कि – 'ते क़ौम होई इह वाखरी' (यानि 'तो एक भिन्न क़ौम उत्पन्न हुई')।[36] इन बिंदुओं पर ध्यान देते हुए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उस ज़माने के सफ़ाईकर्मी समाज के बहुसंख्य लोग ख़ुद को न सिर्फ़ एक जाति या जातिगत समूह समझते थे बल्कि एक क़ौम या उम्मत – यानि इस्लामी नमूने पर आधारित (लेकिन इस्लाम से अलग) अंदरूनी तरीक़े से एक एकजुट मज़बूत धार्मिक समुदाय।

उस ज़माने के सूत्रों में कई जगह एक लोककथा मिलती है, जिसमें स्वच्छकार समाज के एक ख़्वाजा झोपड़ा नामक पूर्वज अल्लाह से दुनिया के लोगों के बर्ताव की शिकायत करते हुए अपनी ख़ुद की उम्मत स्थापित करने की तमन्ना का इज़हार करते हैं। ख़्वाजा झोपड़ा कहते हैं :

मैनुन हिंदू न नेरे औन देंगे
मुसलमान न पढ़ेंगे जनाज़ा
मेरी कौन शिफ़ाअत भरेगा
तू सुन ख़ुदा राजा
मैं उम्मत रखना चाहुनान[37]

यानि, हिंदू हमको आने ही नहीं देते। जब हमारा कोई व्यक्ति मरता है तो मुसलमान उसका जनाज़ा पढ़ने से इंकार करते हैं। कौन गवाह बनेगा या कौन होगा मेरा साक्षी? सुनो ख़ुदा राजा, मैं एक उम्मत क़ायम रखना चाहता हूँ।

यह सुनकर अल्लाह जवाब देते हुए झोंपड़ा को आश्वासन दिलाते हैं कि :

रोज़ क़यामत वक़्त दे
तैनुन मिलेगी वदिदि
...
राम ते रहीम किआँ
छप छप जाना
सवा नेज़े ते दिन आवेगा
हाऔए दोज़ख पाना
सामने विखाना
उम्मत तेरी भज्जके
बिहिश्त वर जाना[38]

---

[36] जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1906) : 345.

[37] वही : 350-51.

[38] वही : 351.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 209

यानि कि क़यामत के दिन तुझे महानता मिलेगी... राम और रहीम के लोग (हिंदू व मुसलमान) इधर-उधर बिखरे होंगे और जब सूरज सवा नेज़े तक डूबेगा तो वे लोग दोज़ख़ (नरक) जाएँगे, लेकिन तुमको दिखाऊँगा बहिश्त (स्वर्ग) और तुम्हारी उम्मत जल्दी वहाँ जाएगी।

इस तरह के गीत व लोककथाएँ स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती हैं कि बीसवीं सदी के पहले दशक तक सफ़ाई कामगार समाज के लोग अपने-आपको एक धार्मिक क़ौम या उम्मत समझते थे जो हिंदू, मुसलमान, सिख व ईसाई धर्म से अलग और ख़ुद-मुख़्तार थी। इस क़ौम के लोग हिंदुओं को सहधर्मी समझना तो दूर, उनको (और मुसलमानों को भी) इस लौकिक दुनिया में अपने ऊपर ज़ुल्म और अत्याचार करने वाले समुदाय समझते थे और अपने गीतों में उन शोषक समुदायों के लोगों के नरक में जाने और ख़ुद के स्वर्ग जाने की कल्पना करते थे।

3.

अब तक हम देख चुके हैं कि बीसवीं सदी के आरंभ तक हिंदू समाज के लोग ज़्यादातर सफ़ाईकर्मी समाज और अन्य दलित जातियों को सहधर्मी नहीं समझते थे। परस्पर तरीक़े से स्वच्छकार समाज हिंदुओं को सहधर्मी नहीं मानता था। दोनों थे एक दूसरे से ग़ैर। हमने यह भी देखा है कि हिंदू सुधारवादी संगठन आर्य समाज ने 1896 तक दलित जातियों के बीच जाकर उन्हें अपने धर्म की ओर आकर्षित करने की कोशिश नहीं की थी – बल्कि आर्य समाज के धर्मप्रचारक उस समय तक दलितों के बीच जाने से अपनी घृणा की वजह से हिचकिचाते रहे।

बीसवीं सदी के पहले तीन दशकों में यह सब बदलने लगा। कैसे?

1896 में ही पंजाब की एक दलित जाति – राहतिया – के कुछ लोगों ने जालंधर के आर्य समाज के पास जाकर सदस्य बनने का प्रस्ताव पेश किया।[39] राहतिया जाति उस वक़्त सिख थी, लेकिन सिख धर्म के अंदर जो जातिगत भेद-भाव मौजूद था, उससे परेशान होकर उन्होंने सिखों की सिंह सभाओं में शिकवा पेश किया और जब कई मर्तबा उनकी ये शिकायतें सुनी नहीं गईं तो वे आर्य समाज के पास गए। उनकी माँगें थीं कि उनको मिलना चाहिए कुएँ से पानी लेने का और दरी-क़ालीन पर बैठने का दूसरे सिख व हिंदुओं-जैसा बराबरी का हक़।[40] अक्सर उस ज़माने में जब किसी दलित जाति का परिवार, गाँव या समूह किसी धर्म प्रचारक के पास आता था – चाहे वह धर्म प्रचारक ईसाई हो, मुसलमान या फिर आर्य समाजी – वह कुछ हक़-अधिकार की माँगें लेकर ही आता था। इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी उस धर्म में दिलचस्पी बिलकुल नहीं थी, बल्कि धर्म के प्रति उनकी रुचि व नीयत जो भी थी, उनको शोषण से मुक्ति अवश्य चाहिए थी। ज़ाहिर है कि धर्म परिवर्तन सिर्फ़ एक आध्यात्मिक प्रक्रिया न होकर अपनी दुनियावी हैसियत बेहतर बनाने का और अपनी मानवता की पहचान दूसरों से हासिल करने का भी तरीक़ा था।[41] यह एक महत्त्वपूर्ण कारण था कि पंजाब में उन

---

[39] संन्यासी श्रद्धानंद (1926) : 87-88; सी.एस. एडकॉक (2014) : 120.

[40] सी.एस. एडकॉक (2014) : 120-21.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 210

दशकों में चूहड़ा जाति के लोग बड़ी तादाद में ईसाई धर्म प्रचारकों के पास आकर ईसाई बन रहे थे और एक हद तक मुसलमान और सिख भी बन रहे थे। जो लोग इस तरह से नया धर्म स्वीकार करते थे, वह नया नाम अपनाने के साथ-साथ मैला उठाने का काम भी छोड़ देते थे।[42] इसके अलावा उनको अपने नए सहधर्मियों की तरफ़ से ज़रा-सी इज़्ज़त और ज़मींदारी अत्याचारों से लड़ने की थोड़ी-सी क़ानूनी मदद मिली। साथ ही अपने बच्चों को स्कूल में भेजने का उन्होंने पहला मौक़ा पाया। उस ज़माने के धर्म-परिवर्तन के आंदोलनों की आजकल एक घिसी-पिटी छवि फैली हुई है, जिसमें ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के मद्देनज़र लाचार दलितों के बीच में बिन-बुलाए जाकर उन्हें धर्म प्रचार का निशाना बनाया। इतिहास की सच्चाई इस छवि के विपरीत है – ठोस और पर्याप्त प्रमाण उपस्थित हैं कि ईसाई धर्म प्रचारकों ने दलित तबक़े पर नहीं, बल्कि तथाकथित उच्च जातियों पर ही (पढ़े-लिखे सवर्ण हिंदू और मुस्लिम रईस) धर्म-प्रचार का निशाना साधा और जब दलित वर्ग के लोग ख़ुद-ब-ख़ुद अनपेक्षित तरीक़े से मिशनरियों के पास आने लगे तो मिशनरियों को ताज्जुब हुआ।[43] पहला क़दम ईसाई धर्म प्रचारकों ने नहीं, बल्कि ख़ुद दलितों ने उठाया।

1896 में राहतिया जाति का आर्य समाज के पास आना इसी तरह हुआ। उस समय तक आर्य समाज ने किसी दलित समुदाय के बीच में घुसने की कोशिश नहीं की थी। लेकिन राहतियों को अपनी बराबरी का अधिकार हासिल करने के लिए किसी मज़बूत संरक्षक या आश्रयदाता की ज़रूरत थी, इसलिए वे ख़ुद प्रस्ताव लेकर जालंधर के आर्यों के पास गए। आर्य समाज ने उनका यह प्रस्ताव ख़ारिज कर दिया – एक बार नहीं, कई बार।[44] लेकिन एक मुंशी राम नाम के आर्य समाज नेता – जो बाद में 1917 में संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानंद के नाम से मशहूर हो जाने वाले थे – ने राहतियों का पक्ष लिया और उनके सहारे आख़िरकार 1899-1900 में कुछ राहतिया व्यक्तियों की 'शुद्धि' करवाने के बाद उन्हें आर्य समाज में दाख़िला दिया गया। हिंदुओं ने तुरंत प्रतिरोध किया।[45] जिन आर्य समाजियों ने शुद्धि अनुष्ठान में हिस्सा लेकर राहतियों के साथ भोजन किया था, उनको सवर्ण बिरादरियों, यहाँ तक कि अपने ही परिवार वालों ने बहिष्कृत कर दिया। सनातन धर्म सभा के लेखक पंडित गोपीनाथ ने प्रतिरोध का कारण स्पष्ट करते हुए लिखा, 'अब आर्य समाज नीच जात के व्यक्तियों को – चमार, भंगी, वगैरह – अपने धर्म में लेने लगा है, जो काम हिंदू धर्म को अपवित्र करने और हिंदू धर्म की शुद्धता को नष्ट करने से कम नहीं है।'[46]

---

41 सी. एस. एडकॉक (2014); पी. सनल मोहन (2015); रूपा विश्वनाथ (2014).

42 *गज़ेटियर ऑफ़ द गुरदासपुर डिस्ट्रिक्ट (1892)* : 66; जे. ए. बाइनेस (1893) : 83; डेंज़िल इब्बेटसन (1970) : 293.

43 जेम्स पी. ऑल्टर (1986) : 178; एंड्रयू गॉर्डन (1886) : 421-23; जॉन सी.बी. वेबस्टर (1992) : 38; एच.यू. वीटब्रेक्ट (1886) : 763-66; विलियम हेनरिक्स वाइज़र (2000) : चैप्टर 4.

44 सी. एस. एडकॉक (2014) : 120-21; जेम्स रीड ग्राहम (1943) : 492; जे.टी.एफ. जॉर्डन (1977) : 151-52.

45 सी. एस. एडकॉक (2014); ग्राहम (1943); संन्यासी श्रद्धानंद (1926); जे.टी.एफ. जॉर्डन (1977).

46 सी.एस. एडकॉक (2014) : 123-24.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 211

शुरुआती दौर में हिंदुओं ने 'शुद्धिकरण' का तीव्र विरोध किया और उनका यह विरोध स्वाभाविक था। उस वक़्त तक शुद्धि वह अनुष्ठान था जिसके माध्यम से आर्य समाज कभी-कभार किसी ऐसे व्यक्ति को फिर से हिंदू बनाता था जिसने सवर्ण हिंदू जाति में पैदा होने के बाद बड़े होने पर इस्लाम या ईसाई धर्म को अपनाया और फिर वापस आने का संकल्प किया हो।[47] राहतियों की शुद्धि उस अनुष्ठान का नया उपयोग था। अब इतिहास में पहली बार तथाकथित अछूत लोगों को न सिर्फ़ अंग्रेज़ सरकार के काग़ज़ात पर बल्कि बाक़ायदा किसी देसी रस्म या संस्कार के ज़रिये हिंदू बनाया जा रहा था – यानि कि जिस क़ौम के लोगों से कल तक घृणा थी, और जिनसे बग़ैर मज़दूरी के काम करवाया जा सकता था (बेगार प्रथा), वे आज अचानक सहधर्मी बनाए जा रहे थे। यही नहीं, वे सहधर्मी होने के आधार पर कुएँ से पानी लेने का, अपने बच्चों को स्कूल में भेजने का और हर तरह की बराबरी का अधिकार न्यायसंगत ढंग से माँग सकते थे। इसलिए जब शुद्धि के इस नए इस्तेमाल को लेकर हिंदुओं ने आर्य समाजियों का बहिष्कार किया, कई जगह उन पर हमला भी किया और उनके ख़िलाफ़ मुक़द्दमा दर्ज किया तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं थी।[48]

राहतियों की शुद्धि देखकर पंजाब की दो और दलित जातियों – मेग और ओड – के काफ़ी लोग आर्य समाज के पास उसी क़िस्म की माँगें लेकर आने लगे। आर्य समाज के सूत्रों के अनुसार 1900-1910 के बीच राहतिया, मेग और ओड, तीनों को मिलाकर लगभग

[47] सी.एस. एडकॉक (2014); जेम्स रीड ग्राहम (1943); केनेथ डब्ल्यू जोन्स, (1968); जे.टी.एफ. जॉर्डन (1977); स्वामी श्रद्धानंद (1981); सतीश कुमार शर्मा (1985).

[48] सी.एस. एडकॉक (2014) : 15-42; जे.टी.एफ. जॉर्डन (1977) : 131; रामनारायण एस. रावत (2011) : 143.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 212

छत्तीस हज़ार दलितों की शुद्धि हुई।[49] ग़ौरतलब है कि शुद्धि की इस शुरुआती लहर में आर्य समाज के नेता लोग अभी तक यह दावा पेश नहीं कर रहे थे कि दलित पहले से ही हिंदू थे। मसलन, आर्य समाज के मारूफ़ नायक लाला लाजपत राय ने 1908 के एक साक्षात्कार में यह कहा कि आर्य समाज में दाख़िल होने के लिए 'हिंदुओं के लिए आस्था के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर लगाना ही काफ़ी है, मगर ग़ैर-हिंदुओं के लिए शुद्धि की रस्म अनिवार्य है।'[50] जब उन 36,000 दलितों का आर्य समाज में आगमन शुद्धि के माध्यम से हुआ तो यह स्पष्ट है कि उस समय तक राय के दृष्टिकोण में ये दलित जातियाँ ग़ैर-हिंदू ही थीं।

कुछ दर्जन राहतियों के साथ 1899-1900 में पंजाब में जो सिलसिला शुरू हुआ, वह 1920 के दशक तक पहले हज़ारों और फिर लाखों दलितों के साथ पूरे हिंदुस्तान में व्याप्त शुद्धि के आंदोलन का रूप लेने लगा। इस विवादास्पद आंदोलन के सबसे विख्यात प्रवक्ता और प्रचारक वही मुंशी राम उर्फ़ स्वामी श्रद्धानंद निकले जो आर्य समाज के साथ-साथ कॉन्ग्रेस के भी प्रसिद्ध नेता रहे। 1919 की अपनी एक किताब में स्वामी श्रद्धानंद ने शुद्धि आंदोलन के उन सालों में दलितों को हिंदू बनाने के प्रोत्साहन पर यह लिखा :

> पहले चरण में जब पंजाब में अछूतोद्धार का कार्य शुरू हुआ और जब लाहौर में राहतिया शुद्ध किए गए और आर्य समाज में उनकी भर्ती हुई, उस समय हिंदू लोगों का सख़्त विरोध था। सियालकोट में मेगों की और मुलतान व मुज़फ़्फ़रगढ़ में ओडों की शुद्धि भी तीव्र प्रतिरोध के बावजूद हुई। लेकिन अब एक राजनीतिक लहर ने पूरी अवस्था को तब्दील कर दिया है।[51]

यानि कि जिन अवस्थाओं या परिस्थितियों में 1900 में दलितों के हिंदूकरण से आम हिंदू लोगों का प्रतिरोध स्वाभाविक और अपेक्षित था, वे परिस्थितियाँ 1919 तक राजनैतिक घटनाओं की वजह से बदलने लगी थीं। हिंदू लोग जो पहले दलितों को सहधर्मी समझने से घृणा करते थे, वे कुछ ही वर्षों के अंतराल में उन्हीं दलितों को सहधर्मी और भाई भी कहने लगे। बात इस क़दर कैसे पलट गई?

स्वामी श्रद्धानंद ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए तीन राजनैतिक घटनाओं का ज़िक्र किया। पहली घटना थी बंगाल का 1905 में विभाजन, जिसमें अंग्रेज़ सरकार ने अभूतपूर्व तरीक़े से एक प्रांत के, हिंदू-बहुल और मुस्लिम-बहुल दो अलग प्रांत बना दिए। दूसरी, अंग्रेज़ सरकार के लोकतांत्रिक सुधार नियम (इंडियन काउन्सिल्स ऐक्ट 1909 एवं मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड रिफ़ॉर्म्स 1918-19) का कार्यान्वयन, जिसमें मतदान का अधिकार रखने वाले हिन्दुस्तानियों का दायरा बढ़ाया गया। तीसरी घटना थी यू. एन. मुखर्जी की *अ डायिंग रेस* नामक किताब का छपना

---

[49] पंडित हरिकृष्ण कौल (1911) : 149-50.

[50] जेम्स रीड ग्राहम (1943) : 465.

[51] स्वामी श्रद्धानंद (1987) : 83.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 213

और उसके मुख्य विचार का उत्तर भारत में फैलना कि मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि के कारण हिंदू नस्ल विलुप्त होने के कगार पर थी (मुखर्जी की पूरी दलील जनगणनाओं के आँकड़ों की ग़लत समझ पर आधारित थी)। कुल मिलाकर इन तीन घटनाओं का प्रभाव यह रहा कि समूहों की गणना का राजनैतिक महत्त्व तेज़ रफ़्तार से बढ़ गया। उस ज़माने से पहले कोई नहीं पूछता था कि 'कौन बहुसंख्यक है?' इस तरह का सवाल ही बेमानी था। जो राजा या बादशाह था, वही हुकूमत चलाता था, चाहे जनता में इस या उस समुदाय का जो भी अनुपात हो। लेकिन अब इतिहास में पहली बार लोग न सिर्फ़ एक-एक करके गिने जा रहे थे (जनगणना में), बल्कि उनके समूहों के बहु – या अल्प-संख्यक होने के आधार पर प्रांतों का नक़्शा बनाया जा रहा था और राजनैतिक ताक़त संख्या की बुनियाद पर नापी जा रही थी।

इन परिस्थितियों में हिंदू और मुसलमान नेताओं की नज़र में दलितों की अहमियत अचानक बढ़ गई। दलितों की जनसंख्या का भारीपन देखकर वे समझने लगे कि जिस समुदाय के पास दलित समाज है, वही समुदाय बहुसंख्यक हो सकता है। ख़ास तौर पर संयुक्त पंजाब में, जहाँ मुसलमान, सिख व हिंदू तीनों बहुत-बड़ी आबादी में रहते थे। यह स्पष्ट था कि दलितों में से अगर कोई भी बड़ी जाति मुसलमानों के साथ जोड़ ली जाए या सिखों के साथ गिनी जाए तो पंजाब मुसलमान-बहुल प्रांत या सिख-बहुल प्रांत आसानी से बनेगा। इसलिए स्वामी श्रद्धानंद ने अपनी 'हिंदुओं सावधान!' नाम की किताब में लिखा कि 'यदि सारी अछूत जातियाँ मुसलमान हो जाएँगी तो मुसलमानों का दल हिंदुओं के बराबर हो जाएगा।'[52] अपने लेख 'वर्तमान मुख्य समस्या' में स्वामी श्रद्धानंद ने यही बात स्वराज के सपने से जोड़ दी – 'अगर अछूत सब मुसलमान हो जाएँगे तो वे हिंदुओं के बराबर होंगे और फिर जब स्वतंत्रता होगी तब वे हिंदुओं पर निर्भर नहीं होंगे, बल्कि अपने ही पैरों पर खड़े हो पाएँगे।'[53] स्वामी श्रद्धानंद की नज़र में हिंदुओं के लिए तथाकथित अछूतों के आत्मनिर्भर होने की संभावना किसी भयानक दुःस्वप्न से कम नहीं थी। इसी डर को लेकर *चाँद* पत्रिका में एक लेखक ने यह लिखा कि 'यदि अछूत हिंदुओं की शरण छोड़कर दूसरा धर्म अपनाएँ तो क्या आप ख़ुद अपना संडास (लैट्रीन) साफ़ करेंगे? क्या आप ख़ुद दाई, धोबी और चमार का काम करेंगे?'[54]

बीसवीं सदी के पहले और ख़ासकर दूसरे दशक में स्वामी श्रद्धानंद, आर्य समाज के अन्य नेता और प्रचारक इस तरह की चेतावनी और संदेश जगह-जगह देने लगे। अपने लगभग हर लेख और भाषण में स्वामी श्रद्धानंद दलितों की बहुलता की सबको याद दिलाते थे और उनके हिंदुओं पर निर्भर न होने की संभावित आफ़त से आगाह करते थे। आर्य समाजियों को दलितों का मुसलमानों की संख्या बढ़ाने के साथ उनका ईसाई होकर अंग्रेज़ों की मदद करने का भी डर था। स्वामी श्रद्धानंद ने अपने लेख 'जाति के दीनों को मत त्यागो' में लिखा कि 'यदि

[52] जे. टी. एफ़. जॉर्डन (1981) : 161.

[53] वही : 144.

[54] चारु गुप्ता (2016) : 116.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 214

भारतवर्ष के सात करोड़ अछूत स्त्री और पुरुष सवर्ण के दुर्व्यवहार से तंग होकर ईसाई हो जाएँगे तो हमारे स्वराज्यवादी सनातनधर्मी लीडर पछताने के अलावा कुछ नहीं कर पाएँगे... जब तक हम उन शूद्र भाइयों को अपना ही हिस्सा नहीं समझते और जब तक उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता, तब तक आर्य नस्ल राजनैतिक तौर से ख़त्म होने के ख़तरे में रहेगी।'[55] यहाँ स्वामी श्रद्धानंद दलितों के साथ अत्याचार बंद करने का और अच्छा व्यवहार शुरू करने का हिंदुओं को अपना यह सुझाव देने का कारण साफ़-साफ़ बताते हैं – अल्पसंख्यक बनने का डर। यानि कि आर्य समाज की तथाकथित अछूतोद्धार व दलितोद्धार की जो सारी कोशिशें उन दशकों में की गईं, उनका उद्देश्य अंग्रेज़ों की हुकूमत के नए वर्गीकरण की बुनियाद पर बनाई गई हिंदुओं की बहुसंख्या का संरक्षण करना था।

जैसे-जैसे उन राजनैतिक घटनाओं की वजह से बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक वाली मानसिकता फैलने लगी, वैसे-वैसे हिंदुओं का शुद्धि से विरोध समर्थन में बदलने लगा। जब दलितों के आत्मनिर्भर होने की ख़ौफ़नाक तस्वीर दिखाई गई और उनको हिंदुओं का हिस्सा मानकर हिंदू बहुसंख्या स्थिर बनाने का राजनैतिक लाभ समझाया गया, तो कई हिंदू संगठन जो अब तक शुद्धि का प्रतिरोध करते थे, वे भी शुद्धि की प्रशंसा करने लगे (हिंदू महासभा एक उदाहरण है, जो मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में पहले हिंदू परंपरा के नाम पर अछूतों की शुद्धि की निंदा करती थी, परंतु आख़िरकार 1923 में स्वामी श्रद्धानंद के साथ समझौता करके इसने दलितों की शुद्धि को क़बूल किया और दलितों को सहधर्मी मानने के लिए तैयार होने लगी)।[56]

दलितों की शुद्धि के पहले दौर में (1899-1903) राहतिया, मेग और ओड जातियों ने अनपेक्षित तरीक़े से पहला क़दम उठाया जिसके लिए आर्य समाज पूरी तरह से तैयार नहीं था, लेकिन नई सदी के पहले दो दशक तक शुद्धि के आंदोलन का स्वरूप बदल गया। इस दूसरे दौर में आर्य समाज ख़ुद दलित गाँवों और बस्तियों में प्रचारक भेजने लगा। यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि धर्म-प्रचारकों का अब मक़सद ही था हिंदुओं की जनसंख्या बढ़ाना। शुद्धि के आलोचकों और समर्थकों, दोनों ने इस बात को एक तरह से स्वीकर किया – डॉक्टर आंबेडकर ने शुद्धि को 'संख्या बढ़ाने का एक बचकाना तरीक़ा'[57] बताया जबकि शुद्धि आंदोलन को सबसे ज़्यादा आर्थिक मदद देने वाले घनश्याम दास बिड़ला ने लिखा कि 'यदि आर्य समाजी अपने धर्म प्रचार में थोड़ी सी ज़बरदस्ती करके हिंदुओं की संख्या बढ़ाएँ तो क्या हर्ज है।'[58]

शुद्धि आंदोलन के सरासर सियासी चाल होने के इल्ज़ाम से बचने के लिए आर्य समाज ने इस दूसरे दौर में शुद्धि की परिभाषा ही बदल डाली। अब आर्य समाज की पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं और भाषणों में यह बात लिखी और कही जाने लगी कि दलित वर्ग के लोग शुद्धि करके हिंदू बन नहीं रहे थे, बल्कि अपने पुराने घर में सदियों बाद वापस आ रहे थे। इस

[55] स्वामी श्रद्धानंद (1987) : खंड-VI, 96.

[56] नंदिनी गुप्तू (2001) : चैप्टर 6 ; जे. टी. एफ. जॉर्डन (1981) : चैप्टर 6.

[57] भीमराव रामजी आंबेडकर (1992) : 425.

[58] घनश्याम दास बिरला (1953) : 5.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 215

नई कहानी के मुताबिक़ दलित वर्ग के लोग सदियों पहले योद्धा क्षत्रिय थे, जिनको आक्रांता मुसलमान राजाओं ने युद्ध में हराकर और ग़ुलाम बनाकर तरह-तरह का गंदा काम करने पर बेबस कर दिया था, जिसके बाद वे वीर क्षत्रिय भूल गए कि वे कौन थे और बाक़ी हिंदू समाज भी भूल गया कि वे लोग कभी हिंदुओं का हिस्सा हुआ करते थे।[59] आर्य समाज ने इस आधुनिक मिथक की सर्जना के माध्यम से चार काम एक साथ निपटाने का प्रयत्न किया – पहला, ग़ैर-हिंदू दलित समुदाय को एक हिंदू वंशावली दिला दी। दूसरा, शोषित और गरिमा से वंचित समाज को वीरता की शौर्य-गाथा के ज़रिये गर्व करके ख़ुश होने का एक तरीक़ा निकाला। तीसरा, छुआछूत स्थापित करने की ज़िम्मेदारी का बोझ हिंदुओं के कंधे से उतारकर उन्होंने ख़ुद को दलितों की दयनीय स्थिति के लिए निर्दोष ठहराया। और चौथा, वही बोझ मुसलमानों पर लादकर दलितों को मुसलमानों से विमुख करने का – और उसके बाद उससे बढ़कर मुसलमानों से लड़वाने का – उपाय तैयार किया। इस मिथक का ज़रा भी ऐतिहासिक सबूत न होने के बावजूद, हिंदू बहुसंख्यकवाद के लिए यह बेइंतहा लाभदायक साबित हुआ।

आर्य समाज ने हर पिछड़ी और दलित जाति के लिए इस मिथक का विशेष रूपांतर तैयार किया। सफ़ाईकर्मी समाज को लेकर रूपांतर इस तरह का था कि हिंदुस्तान में मैला [मल] उठाने की प्रथा मुसलमानों ने ही स्थापित की। आर्य समाज के लेखक और प्रवक्ता 1910 और 1920 के दशक में स्वच्छकार समाज के गाँवों और बस्तियों में जाकर यह बताने लगे कि आपके पूर्वज क्षत्रिय थे और हिंदू धर्म की इतनी दृढ़ रक्षा करते थे कि मुसलमानों ने युद्ध जीतकर सबसे घृणात्मक काम – संडास साफ़ करना – उन्हीं से करवाया।[60] इस आधारहीन मिथ्या को किसी तरीक़े से वास्तविकता से जोड़ने की कोशिश करते हुए यह तर्क भी कभी दिया जाता था कि हिंदू लोग शौच-फ़राग़त करने के लिए खेतों में जाते हैं, जबकि मुसलमानों को पर्दा-प्रथा के कारण घर के अंदर संडास की ज़रूरत पड़ती है और जहाँ संडास होता है, वहाँ मैला उठाने की प्रथा होती है। एन. आर. मलकानी ने, जो स्वामी श्रद्धानंद के अनुयायी, गाँधी के हरिजन सेवक संघ के सक्रिय सदस्य और स्वतंत्रता के बाद सांसद भी रहे, अपनी एक किताब में यह कहानी दोहराकर इसको कट्टर हिंदू बहुसंख्यकवादियों के हाथों कॉन्ग्रेस की राजनैतिक मुख्यधारा में सौंप दिया। और अब प्रोफ़ेसर मलकानी के कहने पर अनेक बुद्धिजीवी इसको तथ्य ही समझते हैं (संजीव ख़ुदशाह, 2005; नारायणदास रतनमल मलकानी, 1965; श्यामलाल, 1992)। लेकिन इस मिथक के पीछे ज़रा भी प्रमाण उपस्थित नहीं है – न स्वच्छकार समाज का किसी पुराने ज़माने में क्षत्रिय होने का, और न ही मुसलमानों द्वारा मैला उठाने की प्रथा को स्थापित करने का। प्रमाण जो वास्तविकता में मौजूद है, वह इस तरह का है कि सूखा संडास (इस प्रकार की लैट्रिन, जिसे पानी से नहीं बल्कि किसी व्यक्ति के

[59] नंदिनी गुप्ता (2001) : 196-97; विजय प्रसाद (2000) : 78-79, 107-11; विजय प्रसाद (1996) : 551-59 ; जोएल ली (2021), https://doi.org/10.1080/19472498.2021.1878784, https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/19472498.2021.1878784.

[60] चारु गुप्ता (2016) : 59; विजय प्रसाद (2000) : 78.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 216

हाथ से साफ़ कराया जाता है) भारतीय उपमहाद्वीप के पुरातत्त्व में मुग़ल काल या दिल्ली सल्तनत के काल से नहीं बल्कि इसके कई हज़ार वर्ष पहले सिंधु घाटी सभ्यता के ज़माने से ही देखने के लिए मिलता है।[61] और जब हम पुरातात्त्विक प्रमाणों से लिखित प्रमाणों की ओर बढ़ते हैं तो कई धर्मशास्त्रों में लैट्रिन की सफ़ाई और अन्य प्रकार की सफ़ाई चांडालों से और अन्य क़िस्म के अस्पृश्य वर्ग के लोगों से करवाने का नियम स्पष्ट रूप से मिलता है।[62] भारत में मैला उठाने की प्रथा और इसका जाति व्यवस्था से संबंध सिर्फ़ मुसलमानों के आने से पहले ही नहीं, बल्कि इस्लाम की पैदाइश से भी सदियों पहले उपस्थित था।

4.

अब आती है वाल्मीकि की बात।

ऊपर लिखित पृष्ठभूमि में शुद्धि की दूसरी लहर में आर्य समाज ने 1910 और 1920 के दशक में अपने अनेक प्रचारकों को सफ़ाईकर्मी समाज के बीच उनको हिंदू धर्म की तरफ़ खींचने की कोशिश में भेजा। जिस चूहड़ा जाति के लोगों से मेल-मिलाप में आर्य समाज 1896 तक कतराता था, अब उन्हीं की बस्तियों में धर्म-प्रचार के लिए जाने लगा – मानवता के नाम पर नहीं तो बहुसंख्यकवाद के वास्ते ही सही। इस मुहिम का यू.पी. के ब्राह्मण आर्य समाजी अमीचंद शर्मा और उनके साथी साधू योद्धाराम ने लाहौर और दिल्ली में नेतृत्व किया।[63] 'श्री बाल्मीकि प्रकाश' नाम की एक पुस्तिका लिखकर उन्होंने इस शोषित समाज को संदेश दिया कि 'आप लोग हिंदू हैं। ...जनगणना में आप हिंदू लिखे गए थे। आप लोग हिंदू हैं, वेद आपका धर्म ग्रंथ है, बाल्मीकि जी आपके गुरु हैं।'[64]

कोई इत्तेफ़ाक़ नहीं है कि जनगणना का ज़िक्र इस पुस्तिका में कई बार मिलता है – आर्य समाज के बड़े स्तर के नेताओं की तरह अमीचंद शर्मा की निगाह भी दलितों की संख्याओं पर टिकी हुई थी। वह चाहते थे कि सफ़ाईकर्मी जातियाँ अपनी बड़ी से बड़ी तादाद लेकर अपने ख़ुद-मुख़्तार लाल बेगी धर्म को छोड़कर हिंदू ख़ेमे में आ जाएँ। लेकिन इन जातियों के बीच में रहकर शर्मा और योद्धाराम जान गए थे कि ये लोग अपने आपको न हिंदू समझते थे और न मुसलमान। तो फिर उनको कैसे समझाएँ कि उन्हें अपने आप को हिंदू कहना चाहिए? या उनको कैसे और किस तर्क के साथ विश्वास दिलाएँ कि वे शुरू से ही अनजाने में हिंदू ही थे, वही हिंदू जो पीढ़ियों से उनको तिरस्कृत करते रहे? इस असंभव अभियान में अमीचंद

---

[61] भंवर मेघवंशी (2020) : 45-48; जोनाथन एम. केनीयर (1998) : 60.

[62] मिकेल एक्टर (2010) : 45; उमा चक्रवर्ती (2006) : 83; विवेकानंद एन. झा (1975) : 22; रिचर्ड डब्ल्यू लारिवियर (1989) : 108; (1989) : 150.

[63] भगवान दास (2007) : 34-38; विजय प्रसाद (2000) : 91-92; अमीचंद शर्मा (1928) : 7-10; रमा शर्मा (1995) : 137-41.

[64] अमीचंद शर्मा (1928) : 23.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 217

शर्मा ने एक और आधुनिक मिथक रचकर फैलाया और इस मिथक की मुख्य भूमिका अमीचंद शर्मा ने ऋषि वाल्मीकि को दे दी।

कोई विचार शून्य में पैदा नहीं होता। अमीचंद शर्मा का ऋषि वाल्मीकि से स्वच्छकार समाज को जोड़ना भी नीले आकाश से पुच्छल तारे की तरह नहीं टपका। फिर भी इस जुड़ाव ने स्वच्छकार समाज को एकदम नई पटरियों पर डाल दिया। इस संबंध की परिकल्पना करने में अमीचंद शर्मा की चतुराई को समझने के लिए हमें दो क़दम पीछे हटकर इतिहास को दीर्घ दृष्टि से देखना होगा।

वाल्मीकि एक व्यक्ति नहीं, एक नाम होता है। अशोक, राम चंद्र, मुहम्मद या राहुल की तरह यह नाम भारतीय इतिहास के एक नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों से लगाया जा चुका है। यह नाम काल्पनिक जीवों से भी लगाया गया है, जो देवी-देवताओं के संग लोक कथाओं और पुराणों में मिलते हैं, और ऐतिहासिक व्यक्तियों से भी जिनका धरती पर रहने का प्रमाण शिलालेखों और दस्तावेज़ों में मिलता है। संस्कृत विद्वानों के अनुसंधान के अनुसार आधुनिक काल से पहले वाल्मीकि नाम के कम-से-कम सात विभिन्न व्यक्ति रहे हैं, जिनकी शोहरत इतनी थी कि उनको अपने-अपने ज़माने के इतिहास के पन्नों पर जगह मिली।[65] *महाभारत* में वाल्मीकि नाम के एक सुपर्ण – यानि गरुड़-वंश के एक पक्षी का ज़िक्र है।[66] पंद्रहवीं सदी के एक ओड़िआ दस्तावेज़ में उल्लेख है कि हिंदू देवता ब्रह्मा के एक पुत्र वाल्मीकि नाम से जाने जाते थे।[67] चौदहवीं सदी के प्राकृत भाषा के एक दस्तावेज़ में वाल्मीकि नाम के एक प्राकृत वैयाकरण का उल्लेख है।[68] इस तरह कई काल्पनिक और ऐतिहासिक शख़्सियतें वाल्मीकि नाम से जानी गई हैं।

एक मशहूर शख़्स जिनसे यह नाम आम तौर पर वाबस्ता है, वह संस्कृत *रामायण* के माने हुए रचयिता आदिकवि हैं। प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध कवि होमर की तरह इन वाल्मीकि का वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्ति होना प्रमाणित नहीं किया जा सकता – हो सकता है कि वे वास्तविकता में रहे हों, हो सकता है कि वे काल्पनिक हों। अध्ययन के आधार पर संस्कृत *रामायण* के विशेषज्ञों का कहना है कि *रामायण* का बीच वाला हिस्सा (काण्ड 2-6) शायद एक कवि से लिखवाया गया हो। मगर बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड (काण्ड 1 और 7) कई अलग चरणों में बाद में रचकर बीच वाले हिस्सों के साथ लगाए गए, यानि प्रक्षिप्त हैं। कहा जा सकता है कि *रामायण* अनेक पीढ़ियों के कवियों का फल है, जिसे वाल्मीकि नाम के आदिकवि को प्रदान किया गया।[69] संस्कृत *रामायण* के अंदर इन वाल्मीकि का तुलनात्मक

---

[65] रॉबर्ट पी. गोल्डमैन (1976) : 97-101; जूलिया लेज़्ली (2003); मंजुला सहदेव (1986) : 12-16. मंजुला सहदेव (1997) : 40-41.

[66] जूलिया लेज़्ली (2003) : 85-86.

[67] मंजुला सहदेव (1997) : 40-41.

[68] वही : 40-41.

[69] रॉबर्ट पी. गोल्डमैन (1984) : 15-59.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 218

रूप से कम विवरण मिलता है – लिखा है कि वे एक भार्गव ब्राह्मण थे जिन्होंने सीता, लव और कुश को शरण दी थी और शोकसंतप्त तथा मृत्योन्मुख क्रौंच को देखकर श्लोकों में *रामायण* की रचना की।[70]

स्कंद पुराण में एक और शख़्स से वाल्मीकि नाम जोड़ा गया है। संस्कृत विशेषज्ञों के अनुसार जब *रामायण* 750-500 ई. पू. के बीच में रची गई होगी तो *स्कंद पुराण* इसके लम्बे अर्से बाद, नौवीं सदी ईस्वी के पश्चात ही, रचा जाने लगा और जिन काण्डों में ये नए वाल्मीकि नज़र आते हैं उनके तेरहवीं और चौदहवीं सदी में रचे जाने की संभावना है।[71] मध्यकाल के ये वाल्मीकि एक डाकू थे जो किसी संत से मिलने के बाद अपने पापों से पछताकर दीर्घकालीन तपस्या करके ख़ुद संत बन जाते हैं। दरअसल यह एक लोककथा है, जो प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है – बौद्ध साहित्य में इस कथा का मुख्य किरदार अंगुलिमाल नाम से जाना जाता था, फिर बाद में अलग-अलग राज्यों में और परंपराओं में इस कथा के अलग-अलग रूपांतर मिलते हैं, जिनमें अंगुलिमाल की जगह पर कभी नामदेव (महाराष्ट्र में),[72] कभी सुनन कलिदजगा (इंडोनेशिया में)[73] और कभी वाल्मीकि नाम मिलता है। *स्कंद पुराण* और अन्य मध्यकालीन साहित्य में जब डाकू वाले वाल्मीकि का उल्लेख होता है तो कभी यह किरदार स्पष्ट रूप से रामायण-रचयिता वाल्मीकि से अलग व्यक्ति बताए जाते हैं और कभी उन दोनों को एक ही बनाने की कोशिश की जाती है।[74]

अब तक हमने देखा कि एक गरुड़ वंश का पक्षी, हिंदू देव ब्रह्मा के एक पुत्र, प्राकृत भाषा के एक वैयाकरण, प्राचीन काल के एक दयालु ब्राह्मण कवि, और मध्यकाल के एक सुधरे हुए डाकू, अलग-अलग ज़माने में और भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि में वाल्मीकि नाम से जाने जाते थे। उन तमाम ऐतिहासिक और काल्पनिक वाल्मीकियों के अलावा एक और वाल्मीकि उपस्थित हैं, जिनको पिछले एक सौ साल से हिंदू बहुसंख्यकवादी संगठन छुपाने की कोशिश करते रहे। ये शख़्स सफ़ाईकर्मी समाज के उन्नीसवीं सदी के लोकगीतों और क़िस्से-कथाओं में मौजूद हैं और कभी वाल्मीकि, कभी बाल्मीकि तो कभी 'बाल मीक' और कभी 'बाल नेक' नाम से जाने जाते रहे हैं। यह किस तरह की शख़्सियत थे?

याद कीजिए कि स्वच्छकार समाज के गीतों और कथाओं के सागर में लाल बेग अकेले माने जाने वाले नहीं थे, बल्कि उनके संग इस क़ौम के कई और अहम पूर्वजों, गुरुओं और रहबरों का ज़िक्र है। हम ख़्वाजा झोंपड़ा से मिल चुके हैं, जिन्होंने अल्लाह से अपनी अलग क़ौम माँगी। एक सती चूहड़ी या भदली हलालख़ोरी नाम की पुरखिन भी हैं जिनके नियंत्रण में

[70] वही.

[71] जूलिया लेज़्ली (2003) : 140-42..

[72] क्रिश्चियन ली नोवेट्ज़क (2008).

[73] क्लिफ़ोर्ड गीयर्ट्ज़ (1968) : 29.

[74] जूलिया लेज़्ली (2003) :140-50.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 219

ग्रहण होते हैं।[75] एक पुंदरी या जस्तरी नाम की पुरखिन हैं जो सूअर पालती हैं और कुष्ठरोगियों का इलाज करती हैं।[76] जिन वाल्मीकि या बाल्मीकि की बात हम अब कर रहे हैं, वे इन गीतों और क़िस्सों में पुंदरी या जस्तरी के पिता हैं और लाल बेग के पिता जैसे पालक। स्वच्छकार समाज के वाल्मीकि ग़ज़नी (अफ़ग़ानिस्तान) के रहने वाले हैं, जो अपने आप को चांडाल कहते हैं और जिनके पास निःसंतान दंपति औलाद की ख़्वाहिश लेकर दूर से आते हैं। ऐसे दंपतियों की ख़्वाहिश पूरी करके ये वाल्मीकि, लाल बेग की पैदाइश में मदद करते हैं।[77] फिर लाल बेग और लाल बेगी क़ौम के साथ ये वाल्मीकि काबुल, थानेसर, कश्मीर और काशी जाते हैं। काशी में वहाँ के चांडालों पर ब्राह्मणों का ज़ुल्म देखकर ये वाल्मीकि क्रोधित होकर सड़े हुए शव का रूप धरकर ब्राह्मणों के घरों में प्रकट हो जाते हैं, और तब तक इस क़िस्म के भयानक रूप लेते रहते हैं जब तक काशी के ब्राह्मण लोग चांडालों पर अत्याचार बंद नहीं कर देते।[78] एक और कहानी में यह वाल्मीकि चांडाल होने के बावजूद पांडवों के एक यज्ञ में बुलाए जाते हैं, पर उनको भोजन खिलाते वक़्त द्रौपदी को उनका खाना खाने का तरीक़ा देखकर घृणा होती है और द्रौपदी के दुर्भाव की वजह से यज्ञ पूरा नहीं हो पाता।[79]

सफ़ाईकर्मी समाज के लोकगीत और लोककथाएँ जो प्रामाणिक रूप से आर्य समाज के हस्तक्षेप से पहले प्रचलित थीं, उनमें जहाँ वाल्मीकि (या बाल मीक, बाल नेक) नाम के ये शख़्स मौजूद हैं, वहाँ न *रामायण* के रचे जाने की बात है और न सीता, लव-कुश, क्रौंच पक्षी, संस्कृत श्लोक, व भार्गव ब्राह्मण या किसी और प्रकार के ब्राह्मण होने का ज़रा भी उल्लेख है। यानि कि इन गीतों और कथाओं में इन वाल्मीकि का *रामायण* रचने वाले वाल्मीकि से किसी तरह के संबंध रखने का कोई अंदरूनी सबूत नहीं है। इतना ही नहीं, इस बात के सकारात्मक प्रमाण उपस्थित हैं कि उस ज़माने के हिंदू लोग स्वच्छकार समाज वाले इन वाल्मीकि से एक हद तक अवगत थे और वे भी समझते थे कि ये दो अलग वाल्मीकि थे। तभी नाभादास के *भक्तमाल* पर अपनी अठारहवीं सदी में रची गई टीका में प्रियादास ने 'उभै बाल्मीकि' का उल्लेख करके दो भक्तों का विवरण दिया – एक *रामायण* रचयिता और एक 'चांडाल वाल्मीकि', जिन्हें यज्ञ में बुलाया जाता है।[80] तभी सीतारामशरण रूपकला ने *भक्तमाल* पर अपनी 1910 में छपी हुई टीका के सूची पत्र में इन दो वाल्मीकियों को अलग अलग विषय का स्थान दिया – एक 'महर्षि श्रीवाल्मीकिजी' के लिए (पृष्ठ 148-151) और एक 'दूसरे बाल्मीकिजी' के लिए (पृष्ठ 151-158)।[81] स्वच्छकार समाज के अंदर और बाहर भी लोग

[75] रंजीत गुहा (2010); ख़्वाजा हसन निज़ामी (1923) : 11-12; जेफ़री जी. स्नोडग्रास (2006) : 75-79.

[76] रिचर्ड कॉर्नाक टेम्पल (1884); जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1906) : 23-24.

[77] रिचर्ड ग्रीवेन (1894) : 28-29; रिचर्ड कॉर्नाक टेम्पल (1884) संख्या 7; सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला (1962), (1910) : 148-58.

[78] रिचर्ड कॉर्नाक टेम्पल (1884) संख्या 8.

[79] सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला (1962), (1910) : 148-58; रिचर्ड कॉर्नाक टेम्पल (1884) संख्या 15.

[80] सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला (1962), (1910) : 148-58.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 220

समझते थे कि इतिहास और पौराणिक कथाओं में अनेक वाल्मीकि रहे हैं और उनमें से *रामायण* के रचयिता अलग थे और ब्राह्मणों के ज़ुल्म के ख़िलाफ़ जद्दोजहद करने वाले ग़ज़नी के बाशिंदे करिश्माकार वाल्मीकि अलग थे।

सफ़ाईकर्मी समाज की लोककथाओं में लाल बेग और ये ग़ज़नी वाले वाल्मीकि, दोनों अपनी दबी हुई क़ौम के लिए ताक़तवरों से लड़ते हैं और इस क़ौम के लोग दोनों को मानते थे। क़ौम के रीति-रिवाजों में इन दो रहबरों का ज़िक्र था। स्वाभाविक था कि इस समाज के लोग ऐसे पीर व गुरु से अपना टाइटल भी लेते थे। हम देख चुके हैं कि ज़्यादातर लोग अपने आपको लाल बेगी कहते थे, मगर पंजाब के कुछ ज़िलों में लोग अपने आप को बाला शाही भी कहते थे – याद कीजिए कि बाला शाह लाल बेग का वैकल्पिक नाम था – और पंजाब के एक-दो ज़िलों में लोग ख़ुद को बाल्मीकि भी कहते थे।

यही स्थिति तब भी क़ायम थी, जब अमीचंद शर्मा और साधू योद्धाराम लाहौर और दिल्ली की सफ़ाईकर्मी जातियों की बस्तियों में जाकर उनको हिंदू धर्म की तरफ़ आकर्षित करने की कोशिश करने लगे। हमने कहा है कि कोई विचार शून्य में पैदा नहीं होता। स्वच्छकार समाज के हिंदूकरण के उपाय के लिए अमीचंद शर्मा ने ऋषि वाल्मीकि (यानि *रामायण*-रचयिता वाल्मीकि) का मनमाने तरीक़े से या निरुद्देश्यता से चयन नहीं किया, बल्कि इसलिए चयन किया कि उस समाज की परंपराओं में एक वाल्मीकि (बाल्मीक, बाल नेक) नाम के महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय गुरु पहले से ही मौजूद थे। अमीचंद शर्मा की आविष्कारशील तरकीब बस इतनी थी कि वह सफ़ाईकर्मी समाज के वाल्मीकि – लाल बेग के पिता-से साथी, सूअर पालने वाली पुंदरी के पिता, अपने आपको चांडाल कहने वाले, काशी के ब्राह्मणों के ज़ुल्म के विरुद्ध लाश का रूप अपनाकर संघर्ष करने वाले ग़ज़नी के करिश्माकार – को किसी तरह से *रामायण* रचयिता वाल्मीकि से जोड़ दिया।

चूँकि ये दो वाल्मीकि एक दूसरे से इतने भिन्न थे, चुनांचे अमीचंद शर्मा के संदेश सुनने वालों को संदेह होता था। अपनी पुस्तिका 'श्री वाल्मीकि प्रकाश' में अमीचंद शर्मा ने लाहौर और दिल्ली के स्वच्छकार समाज के बीच में धर्म प्रचार करने के अपने अनुभव का एक तरह का नाटकीय रूपांतर कर दिया, और इसमें उन लोगों को जो संदेह होता था, वह साफ़ नज़र आता है। 'श्री वाल्मीकि प्रकाश' का मुख्य भाग एक नाटकीय संवाद है, जिसमें एक राम सेवक (जो ख़ुद अमीचंद शर्मा की भूमिका निभाता है) और एक बाल्मीकिया (जो अमीचंद शर्मा को सुनने वाले सफ़ाई पेशे से जुड़ी जाति के व्यक्ति की भूमिका निभाता है) एक दूसरे से वार्तालाप करते हैं। संवाद के आरंभ में ही वाल्मीकि नाम के अनेक ऐतिहासिक और काल्पनिक शख़्सियतों के होने का मुद्दा खड़ा हो जाता है। किसी सुबह राम सेवक वाल्मीकि के नाम का कोई भजन गा रहा होता है और बाल्मीकिया सुनकर पूछता है कि :

[81] वही : 2.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 221

> महाराज! आप किस बाल्मीकि जी के भजन गा रहे हैं?
> राम सेवक बोला कि भाई क्या बाल्मीकि जी भी बहुत से हुए हैं?
> बाल्मीकिया—मैं पढ़ा हुआ तो नहीं हूँ, पर सुना है कि भक्तमाल में दो बाल्मीकों की कथा है। ग्रन्थ साहिब वाले कहते हैं कि सात बाल्मीकि हुए हैं, क्या यह असत्य है?[82]

हम देख चुके हैं कि यहाँ बाल्मीकिया का संदेह वाजिब भी है और सबूत पर क़ायम भी। उसके तर्कसंगत शक के बावजूद और विभिन्न ऐतिहासिक और काल्पनिक वाल्मीकियों के होने के तमाम प्रमाणों को नज़रंदाज़ करते हुए राम सेवक आग्रह करता है कि नहीं, एक ही वाल्मीकि रहे हैं – *रामायण*-रचयिता। फिर यह सवाल स्वाभाविक तरीक़े से खड़ा हो जाता है कि जब ऋषि वाल्मीकि को *रामायण* के अंदर कई बार भार्गव ब्राह्मण बताया जाता है तो फिर वह चांडाल भी कैसे हो सकते हैं? इस उलझन को राम सेवक इस तरह सुलझाता है – वह बताता है कि 'श्री बाल्मीकि जी आप लोगों के पिता गुरु नहीं किंतु शिक्षा देने वाले गुरु हैं।'[83] इस उपाय से अमीचंद शर्मा स्वच्छकार समाज को हिंदू गुरु-परंपरा से जोड़कर उनको हिंदू कहने का एक आधार भी तैयार करते हैं और ब्राह्मणवाद को बचाते भी हैं। इस तरह बचाते हैं कि अगर ऋषि वाल्मीकि से इन जातियों का रिश्ता ख़ून का नहीं बल्कि शिष्य का माना जाए, तो फिर एक चांडाल के ब्राह्मण होने की या एक ब्राह्मण के चांडाल होने की संभावना – एक संभावना जो ब्राह्मणवाद के लिए सत्यानाश के बराबर साबित हो सकती है – मिट जाती है।

अमीचंद शर्मा की पुस्तिका में सफ़ाईकर्मी समाज का किरदार राम भक्त की सारी बातें आसानी से स्वीकार नहीं करता। उसको हर बात पर शक है। वह पूछता है – 'इस बात का क्या सबूत है कि हमारे गुरु *रामायण* के लिखने वाले बाल्मीकि हैं, या कोई और?'[84] बाद में यह भी पूछता है कि 'जब हम हिंदू हैं तो फिर हिंदू लोग हमें छूते क्यों नहीं, इसका क्या कारण है और क्या वह छूत-छात कभी दूर भी होगी?'[85] और आख़िर में राम भक्त का सारा प्रचार स्वीकार करने के बाद भी वह पूछता है कि – 'आप की कृपा के लिए मैं आपका बहुत ही शुक्रगुज़ार हूँ, पर फिर मेरे मन में यह सवाल उठता है [कि] आज तक यह सब ज़ाहिर क्यों न हुआ?'[86] इस किरदार का शक और संदेह स्वाभाविक है और उसका बार बार शक-भरा सवाल उठाना दर्पण की तरह दिखाता है कि अमीचंद शर्मा के ख़ुद के वास्तविक अनुभव में इस समाज के लोग आर्य समाज का संदेश क़बूल करने के लिए तुरंत तैयार नहीं थे।

मौखिक स्रोत इस निष्कर्ष को सहारा देते हैं। अमीचंद शर्मा और साधू योद्धानाथ को ख़ुद देखने वाले लोग मेरे शोध कार्य के आरंभ होने से पहले दुनिया से चले गए। लेकिन जब विजय

---

82 अमीचंद शर्मा (1928) : 11.

83 वही : 19.

84 वही : 21.

85 वही.

86 अमीचंद शर्मा (1928) : 31.

प्रसाद ने 1990 के दशक में अपने पीएच.डी. अध्ययन में दिल्ली के स्वच्छकार समाज के बुज़ुर्गों का साक्षात्कार लिया, तो जो लोग अपने बचपन में इन घटनाओं के चश्मदीद गवाह रहे थे, उन्होंने विजय प्रसाद को बताया कि शुरू में बिरादरी के लोग अमीचंद शर्मा की बात बिलकुल नहीं मानते थे।[87] दिल्ली में स्वच्छकार समाज के लोग अपने ख़ुद-मुख़्तार मज़हब को छोड़ना नहीं चाहते थे – वे क्यों इस बाहर के धर्म प्रचारक की बात मानें कि उनको अपने लाल बेग, सती चूहड़ी, पुंदरी, ख़्वाजा झोंपड़ा सब को भूल जाना चाहिए? यही नहीं अपने चांडालों के अधिकारों के अलमबरदार ग़ज़नी के बाशिंदे बाल्मीक की जगह पर हिंदुओं के ऋषि वाल्मीकि को ही अपना गुरु अपनाएँ? वे क्यों अपने आपको लाल बेगी न कहें और क्यों उस समुदाय के लोगों को सहधर्मी मानें जो उनसे घृणा करते थे, दूरी बनाकर रखते थे? लेकिन जब अमीचंद शर्मा ने सफ़ाई कर्मचारियों की एक हड़ताल में हिस्सा लिया और सफ़ाई कर्मचारियों के साथ जेलख़ाने में भी गए, तब बिरादरी के कुछ लोग उनके संदेश पर ध्यान देने लगे।[88] जब अमीचंद शर्मा और उनके आर्य समाजी साथियों ने यह दिखाया कि वे दलितों के साथ-साथ हक़-अधिकार प्राप्त करने के लिए कुछ ज़मीनी स्तर पर काम करेंगे, तब उनकी बात संजीदगी से ली जाने लगी।

1920 के दशक में साम्प्रदायिक तल्ख़ियाँ बढ़ गईं और आर्य समाज का शुद्धि आंदोलन अपने शबाब पर था। अमीचंद शर्मा उन वर्षों में सक्रिय रहे और 'श्री बाल्मीकि प्रकाश' 1928 में तैयार हो गई[89], लेकिन सफ़ाईकर्मी समाज में 1930 तक आर्य समाज को कुछ ख़ास सफलता नहीं मिली। आख़िर 1930 में शर्मा की मुहिम रंग लाने लगी, जब लाहौर में स्वच्छकार जातियों के 6,000 से अधिक लोगों की शुद्धि हुई। तीन साल बाद इस समाज के 1,530 और व्यक्तियों ने हिंदू आर्य धर्म अपनाया।[90] दिल्ली में 1930 के दशक में सफ़ाई पेशे से जुड़ी जातियों में मृतकों को पहले क़ब्रिस्तान में दफ़नाते थे, अब श्मशान घाट ले जाकर जलाने लगे, और जहाँ मुहल्ले में लाल बेग के थान होते थे वहाँ अब वाल्मीकि के मंदिर बनने लगे।[91] जोधपुर में उन्ही वर्षों में स्वच्छकार समाज के लोगों ने आर्य समाज के धर्म प्रचार के प्रभाव में आकर गाय का माँस खाने पर प्रतिबंध लगा दिया और 'अपने मुसलमान नाम – अकबर, मुल्तान, दातादीन, आलादीन, वग़ैरह – छोड़कर [हिंदू क़िस्म के] नाम – जगदीश कुमार, गणेश राम, राम चंदर, वग़ैरह – अपना लिए।'[92] सफ़ाई कामगार समाज के हिंदूकरण की प्रक्रिया शुरू हो गई थी ।

इन बिरादरियों में साधुओं का एक पंथ हुआ करता था, जिसके महंत उस ज़माने में ख़ाक शाह बाबा नाम से जाने जाते थे। उनकी समाधि दिल्ली में है और उनके मुरीदों ने कई जगहों

---

[87] विजय प्रसाद (2000) : 90-92.

[88] वही : 90-92.

[89] अमीचंद शर्मा (1928) : 13.

[90] वही : 70.

[91] विजय प्रसाद (2000) : 109-10; रमा शर्मा (1995) : 141.

[92] श्यामलाल (1984) : 29-30.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 223

पर – पुणे, हरियाणा, उ.प्र. के मेरठ और सीतापुर में – आश्रम स्थापित किए। ख़ाक शाह बाबा की समाधि पर लिखा है कि उनका निधन 1924 में हुआ। उन आश्रमों से संबंधित कुछ लोग बताते हैं कि ख़ाक शाह बाबा और अमीचंद शर्मा एक दूसरे को जानते थे और इस बात को लेकर यह सवाल भी उठाया जाता है कि यदि वे एक दूसरे को जानते थे तो क्या ख़ाक शाह बाबा का अमीचंद शर्मा पर या शर्मा का ख़ाक शाह बाबा पर किसी तरह का विचारधारात्मक असर पड़ा था? सवाल अच्छा है लेकिन तत्कालीन प्रमाण के अभाव में इस बिंदु पर टिप्पणी करना फ़िज़ूल होगा। ख़ाक शाह बाबा के पंथ के अनुयायियों द्वारा लिखी अनेक किताबें उपस्थित हैं। लेकिन अभी तक जो मैंने देखी हैं, वे ख़ाक शाह बाबा की मृत्यु के कई दशकों बाद लिखी हुई हैं (नौशेरी लाल बौहट, 1996; पंडित रामाराव बाल्मीकिया गहलोत,1964; जोगेंद्र कुमार, 2011)। उन पुस्तकों के आधार पर बस यह कहा जा सकता है कि उस पंथ पर अमीचंद शर्मा और आर्य समाज का कुछ असर दिखाई देता है – उदाहरण के तौर पर अमीचंद शर्मा की 'श्री बाल्मीकि प्रकाश' के कुछ हिस्से पंथ के अनुयायियों द्वारा लिखी 'महर्षि वाल्मीकि ज्ञान दीपक प्रकाश' नाम की किताब में ऐसे ही बिना स्रोत बताए डाले हुए हैं (नौशेरी लाल बौहट, 1996)।

5.

सफ़ाईकर्मी जातियों के हिंदूकरण की प्रक्रिया की बुनियाद अंग्रेज़ औपनिवेशिक सरकार ने जनगणनाओं में अपने नए वर्गीकरण के साथ तामीर की। फिर आर्य समाज ने अपने धर्मप्रचार और शुद्धि आंदोलन में दूसरा चरण जारी किया। अमीचंद शर्मा की मुहिम को लाहौर, दिल्ली और उत्तर भारत की कई जगहों पर एक हद तक सफलता मिली – 1930 और 1940 के दशक में लाल बेग के थानों की तोड़-फोड़ होने लगी, ऋषि वाल्मीकि के मंदिर बनने लगे, और इन बिरादरियों के काफ़ी लोग अपने आपको हिंदू कहने लगे। लेकिन यह आंदोलन उन दशकों में पूरे हिंदुस्तान में नहीं फैला – अन्य जगहों में आर्य समाज की इस कोशिश का न नाम था और न निशान। मिसाल के तौर पर लखनऊ शहर में स्वच्छकार समाज के बुज़ुर्गों ने मुझको साक्षात्कार में बताया कि उन्होंने अपने 1947 से पूर्व बचपन में वाल्मीकि का नाम तक नहीं सुना था। बुज़ुर्गों ने यह भी बताया कि जब 1950 में लखनऊ छावनी के कुछ आर्य समाज से प्रभावित नौजवानों ने शहर की पहली वाल्मीकि जयंती आयोजित की तो बिरादरी के बाक़ी लोगों को ये नए गुरु और नया त्यौहार अजीब से लगे। बल्कि उन्हें उन नौजवानों के ऋषि वाल्मीकि से संबंधित नारे पर बिरादरी के बहुत लोगों का मज़ाक उड़ाना याद है।[93] वाराणसी में भी ऋषि वाल्मीकि का प्रचार बाद में आया और इसे स्वच्छकार समाज के कम लोगों ने माना।[94]

जब आर्य समाज के प्रयास की कामयाबी आधी-अधूरी रह गई तो स्वतंत्रता प्राप्त होने

[93] जोएल ली (2015), http://samaj.revues.org/3919.

[94] मैरी सर्ले-चटर्जी (1981) : 24, 26-27.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 224

के बाद इस प्रयास को अनपेक्षित कोने से सहारा मिला – हिंदूकरण का तीसरा चरण भारत सरकार ने जारी किया। सरकार ने 'संविधान (अनुसूचित जातियाँ) आदेश 1950' में यह नियम लागू किया कि 'कोई व्यक्ति जो हिंदू धर्म से भिन्न धर्म मानता है, अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं समझा जाएगा।' हिंदू बहुसंख्यकवाद के लिए इससे ज़्यादा मज़बूत सहारा नहीं हो सकता था। जिस वक़्त भारत की पहली दलित पीढ़ी को अपने बच्चों को दूसरे बच्चों के साथ स्कूलों में पढ़ाने का बराबर का अधिकार मिला, उसी वक़्त यह अधिकार हिंदू धर्म मानने की शर्त के साथ नत्थी कर दिया गया। व्यावहारिक रूप से इसका मतलब यह था कि दलित माता-पिता जब अपने बच्चों को स्कूल में भर्ती करने जाते थे तो जिस वज़ीफ़े या छात्रवृत्ति के माध्यम से फ़ीस माफ़ की जाती थी, उसको प्राप्त करने के लिए उनको अपने आपको और अपने बच्चों को हिंदू ही कहना पड़ता था। तदनुसार स्वच्छकार समाज के माता-पिता 1950 और 1960 के दशक में बहुत बड़ी तादाद में अपने बच्चों को हिंदू नाम देने लगे और ख़ुद को लाल बेगी न कहकर वाल्मीकि कहने लगे। स्वामी श्रद्धानंद, अमीचंद शर्मा और अन्य आर्य समाजियों का जो बहुसंख्यकवादी सपना पहले अधूरा रह गया था, अब पूरा हो गया। पचास साल पहले जो सोच लगभग सभी को असंगत या बेतुकी लगती थी – कि हिंदू लोग और सफ़ाई कामगार समाज के लोग एक दूसरे के सहधर्मी थे – अब वह सोच देश की क़ानूनी व्यवस्था में स्थिर हो गई थी।

लेख में हमने बीसवीं सदी के इस सवाल पर रोशनी डालने की कोशिश की है कि हिंदू समाज से अलग ही नहीं बल्कि विपरीत भी एक ख़ुद-मुख़्तार धार्मिक क़ौम कैसे हिंदुओं का एक अंदरूनी हिस्सा मानी जाने लगी और इस प्रक्रिया में ऋषि वाल्मीकि की क्या भूमिका थी। इस समूल परिवर्तन का अंतिम अध्याय अब तक तय नहीं हुआ है। 1950 के बाद वर्तमान तक अनेक संभावनाएँ नज़र आती हैं। कम शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्वच्छकार समाज का हिंदूकरण बाहर से मुक़म्मल और हर जगह एक समान दिखाई देता है पर अंदर से ऐसा नहीं है। इन बिरादरियों में कई विभिन्न विचारधाराएँ प्रचलित हैं और धर्म के प्रति विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण। यह सत्य है कि अनेक जगहों में जहाँ आर्य समाज और आर.एस.एस. का लगातार प्रभाव पड़ता रहा है, इन जातियों के कट्टर हिंदू होने की और साम्प्रदायिक दंगे-फ़सादों में शरीक होने की ख्याति हो गई है।[95] लेकिन दूसरी तरफ़ स्वच्छकार समाज में वैसा भी मज़बूत हिस्सा है, जो डॉक्टर आंबेडकर की चेतावनियाँ मानकर हिंदूकरण से बचकर रहता है, ऋषि वाल्मीकि को हिंदुत्व का औज़ार समझता है और अपने बिरादरी वालों को साम्प्रदायिकता से दूर रहने की सलाह देता है।[96] भगवान दास और ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे प्रभावशाली लेखकों ने दलित चेतना और आत्मसम्मान की इस विचारधारा को लोकप्रिय करने में बड़ा योगदान दिया है (भगवान

95 भंवर मेघवंशी (2020) : 223; बद्री नारायण (2009) : 34; विजय प्रसाद (2000) : ix-xv.

96 निकोलस जौल (2012) : 102-16.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 225

दास, 2009; ओमप्रकाश वाल्मीकि, 2008)। फिर तीसरा खेमा है जिसके सदस्य ऋषि वाल्मीकि को मानते हैं, लेकिन उस तरह से नहीं मानते जो आर्य समाज और आर.एस.एस. वाले चाहते हैं। जहाँ अमीचंद शर्मा जैसे लोगों ने ऋषि वाल्मीकि को राम के भक्त और हिंदुत्व के अलमबरदार के रूप में दिखाया, वहीं दूसरी ओर इस खेमे के लोग ऋषि वाल्मीकि को शिक्षा का प्रतीक एवं पढ़े-लिखे बनने का प्रेरणा स्रोत बनाने की कोशिश करते हैं। इस खेमे में लोग उस बात पर ज़ोर देते हैं कि मूर्तियों व तस्वीरों में हिंदू देवी-देवताओं के हाथ में हथियार हैं, परंतु ऋषि वाल्मीकि के हाथ में क़लम है, जो तालीम का चिह्न होता है।

संक्षेप में इस समाज के एक हिस्से ने हिंदुत्व का रास्ता पकड़ा है, दूसरे ने आंबेडकर की विचारधारा अपनाई है, और बाक़ियों ने ऋषि वाल्मीकि और डॉक्टर आंबेडकर के बीच समझौता करने का भरपूर प्रयत्न किया है। वहीं और भी एक समूह है जो बड़ी संख्या में होने के बावजूद भी एक तरह से अदृश्य है। ये वे लोग हैं जो बाहरी तौर से ऋषि वाल्मीकि का नाम और हिंदू होने की पहचान स्वीकार करते हैं लेकिन बहुसंख्यकवादी हस्तक्षेप करने वालों की निगाहों से दूर अपनी बस्तियों और घरों में अंदरूनी रूप से चुपके से अपनी क़ौम की ख़ुद-मुख़्तार परंपरा निभाते हैं। लाल बेग अभी भी ज़िंदा हैं। ग़ज़नी के करिश्माकार बाल्मीक भी पूरी तरह से भुलाए नहीं गए हैं। बीसवीं सदी की सारी साम्प्रदायिक राजनीति ने लाल बेगी धर्म को दुनिया से मिटाया नहीं, बस पर्दे के पीछे खिसका दिया है। यह एक सोचने वाला मुद्दा है जिस पर एक अलग लेख लिखा जा सकता है।

मानव इतिहास में कुछ भी अपरिहार्य नहीं होता। कोई कह नहीं सकता है कि सौ साल बाद समाज का क्या रूप होगा और बदलाव के किस रास्ते से हम वहाँ पहुँचेंगे। इस लेख में हमने देखा है कि स्वच्छकार समाज के धर्म को लेकर पिछले दो सौ साल में कितने अनपेक्षित मोड़ आए हैं। आगे क्या होगा कोई नहीं बता सकता। वर्तमान में हिंदू बहुसंख्यकवाद राजनैतिक दायरे में अपने शबाब पर है और अभी भी मैदानी स्तर पर अपने पुराने तौर तरीक़ों से – बस शुद्धि को अब 'घर वापसी' का नाम देकर – दलितों को हिंदू कट्टरपन की ओर खींचने की कोशिश में मसरूफ़ है। लेकिन दूसरी तरफ़ डॉक्टर आंबेडकर की विचारधारा हर पल फैल रही है, जो बहुसंख्यकवाद और साम्प्रदायिकता के भयानक सत्य का पर्दाफ़ाश करती है और साथ ही साथ मानवता, धर्मनिरपेक्षता और आत्मसम्मान को बढ़ावा देती है। और फिर उसी इंसानियत और आत्मविश्वास के मूल्य इन बिरादरियों की ख़ुद की धार्मिक परंपराओं में लाल बेग और ग़ज़नी वाले बाल्मीक की कथाओं में पहले से ही मौजूद हैं। भविष्य में कौन-से वाल्मीकि की बात होगी कुछ कहा नहीं जा सकता। संभावनाओं की विभिन्नता देखकर शायद बस इतना कहा जा सकता है कि राह-ए-इमकानात बंद नहीं।

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 226

संदर्भ

अमीचंद शर्मा (1928), *श्री बाल्मीकि प्रकाश*, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली.

अल हज़ मौलवी, फ़िरोज़ अल-दीन (1925) *फ़िरोज़ अल उर्दू जमा*, फ़िरोज़ संस लिमिटेड, लाहौर.

आर बर्न (1902), *सेंसस ऑफ़ इंडिया*, 1901, एन.डब्ल्यू., प्रोविंसेज़ ऐंड अवध, पार्ट वन, रिपोर्ट, गवर्मेंट प्रेस, भाग xvi, इलाहाबाद.

आर.वी. रसेल और राय बहादुर हीरा लाल (1916), *द ट्राइब्स ऐंड कास्ट ऑफ़ सेंट्रल प्रोविंसिस ऑफ़ इंडिया*, वॉल्यूम-I. मैकमिलन ऐंड कंपनी, लंदन.

इ. ए. गैट (1902), *सेंसस ऑफ़ इंडिया*, 1901, द लोअर प्रोविंसेंज़ ऑफ़ बंगाल ऐंड देयर फ्युदटोरिस, बंगाल सेक्रेटैरियट प्रेस, रिपोर्ट, वॉल्यूम-vi, कलकत्ता.

इ. ए. गैट (1913), *सेंसस ऑफ़ इंडिया*, 1911, सुपरिटेंडेंट गवर्मेंट प्रिंटिंग, रिपोर्ट वॉल्यूम-I, इंडिया, पार्ट-1, कलकत्ता.

उमा चक्रवर्ती (2006), *एवरीडे लाइव्स, एवरीडे हिस्टरीज़ : बियॉन्ड द किंग्स ऐंड ब्राह्मन्स ऑफ़ 'एंसिएंट'* इंडिया, तूलिका बुक्स, नई दिल्ली.

एंड्रयू गॉर्डन (1886), *अवर इंडिया मिशन : अ थर्टी इयर्स हिस्ट्री ऑफ़ द इंडिया मिशन ऑफ़ द युनाइटेड प्रेस्बिटे-रियन चर्च ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका टुगेदर विद प्रर्सनल रेमिनिसेंसेज़*, ए. गॉर्डन, फिलाडेल्फिया.

एच.यू. वीटब्रेक्ट (1886), 'वर्क एमंग द चुहराज़', द *चर्च मिशनरी इंटेलिजेंसर ऐंड रिकॉर्ड,* XI : 763-66.

इलीनॉर ज़ेलियट (1982), 'अ मेडिवल एन्काउन्टर बिटवीन हिंदू ऐंड मुस्लिम – एकनाथ'स हिंदू-तुर्क संवाद' बच्चू.' चैप्टर 7, *इमेजेज़ ऑफ़ मैन : रिलिजन ऐंड हिस्टोरिकल प्रॉसेस इन साउथ एशिया* (सं.), फ्रेड डब्ल्यू. क्लॉथी, न्यू एरा प्रकाशन, मद्रास : 171-195.

ओमप्रकाश वाल्मीकि (2008), *सफ़ाई देवता*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली.

कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय और मुकुंदीलाल श्रीवास्तव (1953) (सं.), *बृहत हिंदी कोश*, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी.

केनेथ डब्ल्यू जोन्स (1968), 'कॅम्युनलिज़म इन द पंजाब : द आर्य समाज कॉन्ट्रीब्यूट.' *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडी,* 28, न.1 : 39-54.

क्रिश्चियन ली नोवेट्ज़के (2008), *रिलिजन ऐंड पब्लिक मेमरी : अ कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ संत नामदेव इन इंडिया*, कोलंबिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

क्लिफ़र्ड गीयर्ट्ज़ (1968), *इस्लाम ऑब्ज़र्व्ड : रिलिजियस डेवलपमेंट इन मोरक्को ऐंड इंडोनेशिया*, युनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो.

ख़्वाजा हसन निज़ामी (1923), *हलाहलख़ोर*, हलका-ए-मशाइख़ बुक डिपो, दिल्ली.

गुरदासपुर डिस्ट्रिक्ट ऑफ़ द गज़ेटियर (1892), 1891-92, सिविल ऐंड मिलिट्री गजट प्रेस, लाहौर.

घनश्याम दास बिरला (1953), *इन द शैडो ऑफ़ द महात्मा : ए पर्सनल मेमॉयर*, ओरिएंट लॉन्गमैंस, बॉम्बे.

चारु गुप्ता (2016), द *जेंडर ऑफ़ कास्ट : रेप्रजेंटिंग दलित इन प्रिंट*, युनिवर्सिटी ऑफ़ वॉशिंग्टन प्रेस, सिएटल.

जूलिया लेज़्ली (2003), *अथॉरिटी ऐंड मीनिंग इन इंडियन रिलिजन्स : हिंदुइज़्म ऐंड द केस ऑफ़ वाल्मीकि*, हन्ट्स, एशगेट, यूके.

जे. ए. बाइनेस (1893), *सेंसस ऑफ़ इंडिया 1891*, जनरल रिपोर्ट, एयरे ऐंड स्पॉट्टिसवूड, लंदन.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 227

जे. टी. एफ. जॉर्डन (1977), 'रिकन्वर्ज़न टू हिंदुइज़्म, द शुद्धि ऑफ़ द आर्य समाज', *रिलिजन इन साउथ एशिया : रिलीजियस कन्वर्ज़न ऐंड रिवायवल मूवमेंट्स इन साउथ एशिया, मेडीवल ऐंड मॉडर्न टाइम्स* (सं.), जेफ़्री ए ओड्डी, एमओ साउथ एशिया बुक्स, कोलंबिया.

जे. टी. एफ. जॉर्डन (1981), *स्वामी श्रद्धानंद : हिज़ लाइफ़ ऐंड कॉज़ेज़*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

जे.एच. मेसमोर (1903), द *लाइफ़ ऑफ़ एडविन वॉलेस पार्कर, डी.डी., मिशनरी बिशप ऑफ़ साउदर्न एशिया, फोर्टी-वन इयर्स अ मिशनरी इन इंडिया*, ईटन ऐंड मेन्स, न्यू यॉर्क.

जेफ़री जी. स्नोडग्रास (2006), *कास्टिंग किंग्स : बार्ड्स ऐंड इंडियन मॉडर्निटी*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

जेम्स एम. कैम्पबेल (1885), *गज़ेटियर ऑफ़ द बॉम्बे प्रेसीडेंसी*, गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस, वॉल्यूम xvii, पार्ट 1, पूना, बॉम्बे.

जेम्स रीड ग्राहम (1943), 'द आर्य समाज ऐज़ अ रिफ़ॉर्मेशन इन हिंदुइज़्म विद स्पेशल रेफ़रेंस टू कास्ट.' पीएचडी. डेज़रटेशन येल युनिवर्सिटी.

जेम्स. पी. आल्टर (1986) *इन द दोआब ऐंड रोहेलखंड : नॉर्थ इंडियन क्रिश्चियनिटी 1815-1915,* आईएसपीसीके, दिल्ली.

जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1896), *फोर्टी इयर्स ऑफ़ द पंजाब मिशन ऑफ़ द चर्च ऑफ़ स्कॉटलैंड 1855-1895*, आर ऐंड आर क्लार्क, एडिनबर्ग.

जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1906), 'द चुहराज़', द *इंडियन एंटीक्वारी,* 35 : 82-96, 302-10, 37-56.

जॉन एफ. डब्ल्यू. यंगसन (1907), 'द चुहराज़ (कंटीन्यूड)', द *इंडियन ऐंटीक्वारी*, 36 : 19-31, 71-83, 106-16, 35-48.

जॉन सी.बी. वेबस्टर (1992), द *दलित क्रिश्चियन : अ हिस्ट्री,* इंडियन सोसाइटी फ़ॉर प्रोमोटिंग क्रिश्चियन नॉलेज़, दिल्ली.

जोएल ली (2015), 'जगदीश, सन ऑफ़ अहमद : दलित ऐंड रिलिजन ऐंड नॉमिनेटिव पॉलिटिक्स इन लखनऊ', *साउथ एशिया मल्टीडिसप्लिनरी अकेडमिक जर्नल*, 11., http://samaj.revues.org/3919.

जोएल ली (2021), 'डिस्गस्ट ऐंड अन्टचैबिलिटी : टुवर्ड्स ऐन ऐफ़ेक्टिव थियरी ऑफ़ कास्ट', *साउथ एशियन हिस्ट्री ऐंड कल्चर* : 1-18., https://doi.org/10.1080/19472498.2021.1878784. https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/19472498.2021.1878784.

जोगेन्द्र कुमार (2011), *सतगुरु कँवलशाह दिग्दर्शन*, महर्षि वाल्मीकि मंदिर सुधार समिति बाबा खाकशाह की समाधि, दिल्ली.

जोनाथन एम. केनीयर (1998), *सिटीज़ ऑफ़ द इंदुस वैली सिविलाइज़ेशन*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, करांची.

डब्ल्यू चिचेले प्लॉडेन (18831), *रिपोर्ट ऑन द सेंसस ऑफ़ ब्रिटिश*, टेकन ऑन 17 फ़रवरी, 1881 वॉल्यूम-I, आयर और स्पॉट्टिसवूड, लंदन.

डेन्ज़िल इब्बेट्सन (1970) पंजाब कास्ट्स बीइंग अ रिप्रिंटिंग ऑफ़ द चैप्टर ऑन 'द रेस, कास्ट्स, ऐंड ट्राइब्स ऑफ़ द पीपल', रिपोर्ट ऑन द सेंसस ऑफ़ द पंजाब, लैंग्वेजेज़ डिपार्टमेंट पंजाब, पटियाला.

दिव्या चेरियन (2022), *मर्चेंट्स ऑफ़ वर्च्यू : हिंदूज, मुस्लिम्स ऐंड अनटचेबल्स इन एटीन्थ सेंचुरी साउथ एशिया*, युनिवर्सिटी ऑफ़ केलिफ़ोर्निया प्रेस, ओकलैंड.

नंदिनी गुप्तू (2001), द *पॉलिटिक्स ऑफ़ द अर्बन पुअर इन अर्ली ट्वेंटिएथ-सेंचुरी इंडिया*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 228

नारदस्मृति : अ क्रिटिकल एडिशन, पार्ट वन, (1989), (अनु.), रिचर्ड डब्ल्यू लॉरिवियर, पेंसिल्वेनिया विश्वविद्यालय प्रेस, फिलाडेल्फिया.

नारदस्मृति : अ क्रिटिकल एडिशन, पार्ट टू (1989),(अनु.), रिचर्ड डब्ल्यू लॉरिवियर, पेंसिल्वेनिया युनिवर्सिटी प्रेस, फ़िलाडेल्फ़िया.

नारायणदास रतनमल मलकानी (1965), *क्लीन पीपल ऐंड ऐन अनक्लीन कंट्री*, हरिजन सेवक संघ, दिल्ली.

निकोलस जौल (2012), 'द मेकिंग ऑफ़ अ पॉलिटिकल स्ट्रॉन्गहोल्ड : अ दलित नेबरहुड्स एक्ज़िट फ़्रॉम द हिंदू नैशनलिस्ट रायट सिस्टम', *एथ्नॉग्रफ़ी* 13, सं. 1 : 102-16.

नौशेरी लाल बौहट (1996), *महर्षि वाल्मीकि ज्ञान दीपक प्रकाश*, महर्षि वाल्मीकि मंदिर तथा आश्रम मोदीनगर.

पंडित रामाराव बाल्मीकिया गहलोत (1964), *सूक्ष्म प्रचार : बाल्मीकि समाज सुधार*, सर्वोदय प्रेस, मेरठ.

पंडित हरिकृष्ण कौल (1911), *सेंसस ऑफ़ इंडिया 1911*, वॉल्यूम XIV : पंजाब भाग I, रिपोर्ट, सिविल ऐंड मिलिट्री गजट प्रेस, लाहौर.

पी. सनल. मोहन (2015), *मॉडर्निटी ऑफ़ स्लेवरी : स्ट्रग्लस अगेंस्ट कास्ट इन्क्वायरी इन कोलोनियल केरला*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

बद्री नारायण (2009), *फ़ैसिनेटिंग हिंदुत्व : सैफ़रॅन पॉलिटिक्स ऐंड दलित मोबिलाइज़ेशन*, सेज, नई दिल्ली.

भंवर मेघवंशी (2020), *आई कुड नॉट बी हिंदू : द स्टोरी ऑफ़ अ दलित इन द आरएसएस*, [मैं एक कारसेवक था] (अनु.), निवेदिता मेनन, नवयाना, नई दिल्ली.

भगवान दास (2009) *इन परस्यूट ऑफ़ आंबेडकर* (अनु.), ईशा, नवयाना, नई दिल्ली.

भगवान दास (2007) *बाल्मीकि जयंती और भंगी जातियाँ*, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली.

भगवान दास (2009) *सफ़ाई मज़दूर दिवस 31 जुलाई*, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली.

भीमराव रामजी आंबेडकर (1992), *डॉ. बाबासाहब आंबेडकर : राइटिंग ऐंड स्पीचेज़,* एजुकेशन डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ़ महाराष्ट्र बॉम्बे.

मंजुला सहदेव (1997), *महर्षि वाल्मीकि, व्यक्तित्व एवं कृतित्व*, पंजाब युनिवर्सिटी प्रेस, पंजाब.

मंजुला सहदेव (1986), 'आदि कवि वाल्मीकि, ऐंड द फ़र्स्ट क्लासिकल संस्कृत पोएट, वाल्मीकि', *द डिवाइन लाइफ़, मंथली जर्नल ऑफ़ द डिवाइन लाइफ़ सोसाइटी* 48, न. 1 : 12-16.

मिकेल अक्टोर (2010), 'अनटचेबिलिटी इन ब्रहमनिकल लॉ बुक्स', *फ़्रॉम स्टिग्मा टू एसर्शन : अनटचेबिलिटी, आयडेंटिटी ऐंड पॉलिटिक्स इन अर्ली ऐंड मॉडर्न इंडिया* (सं.), मिकेल अक्टोर ऐंड रॉबर्ट डेलीज़, म्यूज़ियम सुलानम प्रेस, कोपेन्हेगेन : 31-63.

मुहम्मद हुसैन आज़ाद (1907), *आब-ए-हयात*, नवल किशोर, (1880), लाहौर.

मेरी सर्ले-चटर्जी (1981), *रिवर्सिबल सेक्स रोल्स : द स्पेशल केस ऑफ़ बनारस स्वीपर्स*, पेर्गमॉन प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.

रंजीत गुहा (2010), *द स्मॉल वॉइस ऑफ़ हिस्ट्री*, ओरिएंट ब्लैकस्वान, दिल्ली.

रमा शर्मा (1995), *भंगी, स्कैवेंजर इन इंडियन सोसाइटी : मार्जिनैलिटी, आयडेंटिटी ऐंड पॉलिटिसाइज़ेशन ऑफ़ द कॉम्युनिटी*, एमडी प्रकाशन, नई दिल्ली.

रामनारायण एस. रावत (2011), *रिकन्सिडरिंग अनटचेबिलिटी : चमार्स ऐंड दलित हिस्ट्री इन नॉर्थ इंडिया*, इंडियाना विश्वविद्यालय प्रेस, ब्लूमिंगटन.

रिचर्ड कार्नैक टेम्पल (1884), 'अ स्टोरी ऑफ़ लाल बेग – लालबेगी सेक्ट्स', *पंजाब नोट्स ऐंड क्वारिस-I*, संख्या 10 : 109.

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 229

रिचर्ड कार्नेक टेम्पल (1884), 'अ स्टोरी ऑफ़ लाल बेग ऐंड वाल्मीकि', *पंजाब नोट्स ऐंड क्वारिस-II*, संख्या 15.

रिचर्ड कार्नेक टेम्पल (1884), 'लाल बेग – लाल बेख - मेहतर इलियास - पीर-आइ दस्तगीर', *पंजाब नोट्स ऐंड क्वारिस-I*, संख्या 7.

रिचर्ड कार्नेक टेम्पल (1884), 'लाल बेग – वाल्मीकि – बनारस – चांडालगढ़', *पंजाब नोट्स ऐंड क्वारिस-I*, संख्या 8.

रिचर्ड कार्नेक टेम्पल (1884), *लेजेंड्स ऑफ़ द पंजाब*, खंड-I, ऐजुकेशन सोसाइटीज़ प्रेस, बॉम्बे.

रिचर्ड ग्रीवेन (1894), *द नाइट्स ऑफ़ द ब्रूम : ऐन अटेम्पट टू कलेक्ट ऐंड टू एक्सप्लेन सम ऑफ़ द सेरेमनीज़ ऑफ़ द स्वीपर्स इन द बनारस*, मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस.

रडयार्ड किप्लिंग (1887) 'द वेंज़नेस ऑफ़ लाल बेग', *सिविल ऐंड मिलिट्री गजट*, 3 नवंबर 1887, लाहौर.

रडयार्ड किप्लिंग (1901), *किम*, मैकमिलन ऐंड कंपनी, न्यू यॉर्क.

रूपा विश्वनाथ (2014), *द पारिया प्रॉब्लम : कास्ट, रिलिजन, ऐंड द सोशल इन मॉडर्न इंडिया*, कोलंबिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क.

रॉबर्ट पी. गोल्डमैन (1976), 'वाल्मीकि ऐंड भृगु कनेक्शन', *जर्नल ऑफ़ द अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी 96*, न.-1, 97-101.

रॉबर्ट पी. गोल्डमैन (1984), *द रामायण ऑफ़ वाल्मीकि : ऐन एपिक ऑफ़ एंसियंट इंडिया*, खंड-I, प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन.

वसुधा डालमिया (2007), 'इंट्रोडक्शन', *द ऑक्सफ़र्ड इंडिया हिंदुइज़्म रीडर* (सं.), वसुधा डालमिया और हेनरीक वॉन स्टीटेंक्रोन, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली : 1-23.

विजय प्रसाद (1996), 'अनटचेबल क्वेश्चन', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली* 31, न. 9 : 551-59.

विजय प्रसाद (2000), *अनटचेबल फ़्रीडम : ए सोशल हिस्ट्री ऑफ़ दलित कॉम्युनिटी*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

विलियम हेनरिक्स समझदार (2000), *बिहाइंड मड वॉल्स : सेवेंटी-फाइव इयर्स इन अ नॉर्थ इंडियन विलेज़*, कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, बर्कली.

विवेकानंद एन झा (1975), 'स्टेज़ इन द हिस्ट्री ऑफ़ अनटचेबिलिटी', *द इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू*, खंड 2, संख्या 1 : 14-31.

श्यामलाल (1984), *द भंगीज़ इन ट्रांसलेशन*, इंटर-इंडिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली.

श्यामलाल (1992), *द भंगी : अ स्वीपर कास्ट, इट्स सोसियो-इकनॉमिक पोर्ट्रेट्स, विद स्पेशल रेफ़रेंस टू जोधपुर सिटी*, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे.

संजीव खुदशाह (2005), *सफ़ाई कामगार समुदाय*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली.

संन्यासी श्रद्धानंद (1926), *हिंदू संगठन : सेवियर ऑफ़ द डाइंग रेस*, अर्जुन प्रेस, दिल्ली.

सतीश कुमार शर्मा (1985), *सोशल मूवमेंट ऐंड सोशल चेंज़ : अ स्टडी ऑफ़ आर्य समाज ऐंड अनटचेबल्स इन पंजाब*, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, दिल्ली.

सिंथिया टैलबॉट (1995), 'इनस्क्रबिंग द अदर, इनस्क्रबिंग द सेल्फ़ : हिंदू-मुस्लिम आयडेंटिटीज़ इन प्री-कोलोनियल इंडिया', *कॉम्पेरेटिव स्टडी इन सोसाइटी ऐंड हिस्ट्री 37*, संख्या 4 : 692-722.

सी.एस. एडकॉक (2014), *द लिमिट्स ऑफ़ टॉलरेंस : इंडियन सेकुलरिज़म ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ रिलीजियस फ़्रीडम*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क.

सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला (1962), *श्री भक्तमाल विद द भक्तिरसबोधिनी कॉमेंट्री ऑफ़ प्रियादास,*

08Joel Li_Layout 1 22-02-2024 15:35 Page 230

[1910], तेजकुमार प्रेस, लखनऊ.

सैयद अहमद देहलवी (1879), *फ़रहंग-ए-आसफ़िया*, नैशनल अकादमी, (1898-1918), बनारस, मेडिकल हॉल प्रेस, दिल्ली.

स्वामी श्रद्धानंद (1987), *स्वामी श्रद्धानंद ग्रंथावली*, खंड-VI, (सं.) भवानीलाल भारतीय, गोविंदराम हासानंद, दिल्ली.

हर्बर्ट जॉनसन स्ट्रिकलर (1926), 'द रिलिजन ऐंड कस्टम्स ऑफ़ द चुहरा इन द पंजाब प्रोविंस, इंडिया', एम. ए. शोध, युनिवर्सिटी ऑफ़ कैनसस.

हर्वे डेविट ग्रिसवॉल्ड (1921), 'द भंगी प्रीस्टहुड, ऑल्टर ऐंड सैक्रीफ़ाइस', द *इंडियन विट्नेस 52*, संख्या 30, 565-66.

हर्वे डेविट ग्रिसवॉल्ड (1934), *इनसाइट इन टू मॉडर्न हिंदुइज़्म*, हेर्नी हॉल्ट ऐंड कंपनी, न्यू यॉर्क.

होरेस आर्थर रोज़ (1902), *सेंसस ऑफ़ इंडिया 1901*, खंड XVII, रिपोर्ट, पंजाब ऐंड नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस, पार्ट-I, सरकारी केंद्रीय मुद्रण कार्यालय, शिमला.